रूदाद जमाअत इस्लामी

(पहला हिस्सा)

इजतिमाए अव्वल व इजतिमाए दरभंगा
(अगस्त 1941- अक्टूबर 1943 ई०)

विषय सूची

रूदादे इजतिमा (अव्वल)	**5**
कार्रवाई	**6**
तक़सीमे कार (कार्य विभाजन)	**27**
बौद्धिक व शैक्षिक विभाग (शोब-ए-इल्मी व तालीमी)	27
प्रचार-प्रसार विभाग (शोब-ए-नश्र व इशाअत)	28
संगठन विभाग (शोब-ए-तंज़ीमे जमाअत)	29
वित्त विभाग (शोबा-ए-मालियत)	30
आह्वान और प्रचार विभाग (शोबा-ए-दावत व तबलीग़)	33
हिदायतें	34
रूदादे मजलिसे शूरा	**42**
जमाअत के अस्थायी मरकज़ की स्थापना	**46**
1. तालीम व तरबियत (शिक्षा और प्रशिक्षण)	47
2. इल्मी तहक़ीक़ (बौद्धिक अनुसंधान)	50
3. दावते आम	51
4. आर्थिक उपाय	52
रूदादे इजतिमा	**55**
रूदादे इजतिमा मजलिसे शूरा	55
हिसाब आमद व ख़र्च जमाअते इस्लामी	60
काम की प्रगति	62
रूदादे इजतिमा दरभंगा	**70**

(बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम)

सबसे पहले इजतिमा की रूदाद

रूदादे इजतिमा (अव्वल)

मौलाना मौदूदी की किताब 'मुसलमान और मौजूदा सियासी कशमकश' में इस्लामी तहरीक की व्यांख्या और उसके लिए काम करनेवाली एक जमाअत की ज़रूरत ज़ाहिर की जा चुकी थी और इस मतलूबा जमाअत के गठन का नक़्शा भी पेश कर दिया गया था । इसके छपने के बाद मासिक पत्रिका 'तर्जुमानुल-क़ुरआन' (माह सफ़र, सन् 1360 हिजरी/ 1941 ई०) में आम मुसलमानों को दावत दी गई कि जो लोग इस नज़रिए को क़बूल करके इस तर्ज़ पर अमल करना चाहते हों, वे दफ़तर को इत्तिला दें ।

पत्रिका छपने के थोड़े ही दिनों बाद इत्तिलाएँ आनी शुरू हो गईं और मालूम हुआ कि मुल्क में ऐसे लोगों की अच्छी ख़ासी तादाद मौजूद है जो 'जमाअत इस्लामी' के गठन और उसको क़ायम करने और बाक़ी रखने के लिए जिद्दोजुहद करने पर आमादा है । चुनांचे यह तय कर लिया गया है कि इन तमाम लोगों को एक जगह जमा करके एक सामूहिक (इजतिमाई) शक्ल बना ली जाए और फिर इस्लामी तहरीक (इस्लामी आन्दोलन) को बाक़ायदा उठाने की तदबीरें सोची जाएँ । इस ग़रज़ के लिए शाबान की पहली तारीख़ सन् 1360 हिजरी (25 अगस्त, 1941 ई०) इजतिमा की तारीख़ तय पाई और जिन लोगों ने जमाअत इस्लामी में शामिल होने का इरादा ज़ाहिर किया था, उन सब को हिदायत कर दी गई कि जहाँ इबतिदाई जमाअतें (स्थानीय इकाइयाँ) बन गई हैं वहाँ से सिर्फ़ चुने हुए नुमाइंदे आएँ, और जहाँ लोग अभी इक्का-दुक्का शक्ल में मौजूद हैं, वहाँ से जहाँ तक हो सके, हर शख़्स आ जाए ।

28 रजब से ही लोग इजतिमागाह में आना शुरू हो गए और पहली शाबान तक तक़रीबन 60 आदमी आ चुके थे । बाक़ी सब लोग बाद में आए । इजतिमा में शरीक होनेवालों की कुल तादाद 75 थी ।

कार्रवाई

पहली श'अबान 1360 हिजरी : आनेवालों का इंतिज़ार था, साथ ही कुछ दूसरी वजहों से भी बाक़ायदा इजतिमा न हो सका। अलबत्ता छोटी-छोटी टोलियाँ बनाकर लोग बैठ गए थे। सुबह से शाम तक जमाअत और तहरीक के मुताल्लिक़ आज़ादाना और अनौपचारिक तबादल-ए-ख़याल का सिलसिला जारी रहा। शाम को देर तक लोग 'तर्जुमानुल क़ुरआन' के दफ़्तर के सहन में बैठे रहे। लगभग हर शख़्स मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी साहब की ओर ध्यान लगाए हुए था। लोग क़िस्म-क़िस्म के मसले पेश करते और मौलाना मौदूदी उनका हल पेश करते रहे। इशा के बाद लोग अपनी-अपनी क़यामगाहों में चले गए।

दूसरी श'अबान : आठ बजे सुबह दफ़्तर के कमरे में पहला इजतिमा हुआ। सब लोग फ़र्श पर बैठे थे। मौलाना मौदूदी ज़रूरतन हाज़िरीन की इजाज़त से कुर्सी पर बैठे और असल कार्रवाई शुरू करने से पहले उन्होंने एक निहायत अहम और लम्बी तक़रीर की जिसके दौरान मौजूदा इस्लामी तहरीक के इतिहास पर बहुत ज़रूरी और मुफ़ीद रौशनी डाली। उन्होंने बताया कि एक वक़्त था कि आम मुसलमानों की तरह मैं ख़ुद भी रिवायती और नस्ली मज़हबियत का क़ायल और उसपर अमलपैरा था। जब होश आया तो महसूस हुआ कि इस तरह महज़ "जिस रवैये पर हमने अपने पूर्वजों को पाया"[1] की पैरवी एक निरर्थक और बेमाने चीज़ है। आख़िरकार मैंने अल्लाह की किताब (क़ुरआन मजीद) और रसूल (सल्ल०) की सुन्नत (हदीस) की ओर ध्यान दिया, इस्लाम को समझा और ख़ूब सोच-समझ कर उसपर ईमान लाया।

फिर धीरे-धीरे इस्लाम की व्यापक और तफ़सीली व्यवस्था को समझने

---

1. यह क़ुरआन मजीद की आयत का एक अंश है जिसके मूल शब्द ये हैं— "मा-अलफ़ैना अलैहि आबाअना" यानी हमने अपने बाप-दादों को जिस तरीक़े पर पाया उसी पर हम भी अमल करेंगे। यह काफ़िरों का क़ौल है जो वे नबियों की दावते-तौहीद के जवाब में कहते थे। —अनुवादक

और मालूम करने की कोशिश की । जब अल्लाह ने दिल को इस तरफ़ से पूरी तरह मुतमइन और सन्तुष्ट कर दिया तो जिस हक़ पर ख़ुद ईमान लाया था, उसकी तरफ़ दूसरों को दावत देने का सिलसिला शुरू किया और इस मक़सद के लिए सन् 1352 हि०/ 1933 ई० में रिसाला 'तर्जुमानुल-कुरआन' जारी किया ।

शुरू के कुछ साल उलझनों को साफ़ करने और दीन का एक वाज़ेह तसव्वुर पेश करने में लगे । इसके बाद 'दीन' को एक तहरीक (आन्दोलन) की शक्ल में जारी करने के लिए पेशक़दमी शुरू की । दीन को तहरीक की शक्ल में जारी करने का मक़सद यह है कि हमारी ज़िन्दगी में दीनदारी महज़ एक व्यक्तिगत रवैये की सूरत में जामिद व साकिन न रह जाए, बल्कि हम सामूहिक रूप में दीनी निज़ाम को अमलन लागू व क़ायम करने और रूकावट और प्रतिरोध पैदा करनेवाली ताक़तों को इसके रास्ते से हटाने के लिए जिद्दोजुहद भी करें । 'इदारा दारुल-इस्लाम' की स्थापना इस सिलसिले का पहला क़दम था । सन् 1357 हिजरी 1938 ई० में यह क़दम उठाया गया और उस वक़्त सिर्फ़ चार आदमी रफ़ीके-कार (सहयोगी) बने ।

इस छोटी-सी शुरूआत को उस वक़्त बहुत मामूली समझा गया, पर ख़ुदा का शुक्र है कि हम बददिल न हुए और इस्लामी तहरीक की तरफ़ दावत देने और इस तहरीक के लिए वैचारिक (नज़री और फ़िक्री) हैसियत से ज़ेहन हमवार करने का काम लगातार करते चले गए । इस दौरान एक-एक, दो-दो करके रुफ़क़ा (साथियों) की तादाद बढ़ती रही । मुल्क के अनेक हिस्सों में हमख़याल लोगों के छोटे-छोटे हल्क़े भी बनते रहे । लिट्रेचर के फैलाव के साथ-साथ ज़बानी दावत व तबलीग़ का सिलसिला भी चलता रहा । आख़िरकार तहरीक के प्रभाव का गहरा जायज़ा लेने के बाद महसूस हुआ कि अब जमाअत इस्लामी की स्थापना और तहरीके इस्लामी को संगठित रूप से क़ायम करने के लिए ज़मीन तैयार हो चुकी है और यह वक़्त दूसरा क़दम उठाने के लिए बहुत मुनासिब है । चुनांचे इसी बुनियाद पर इस इजतिमा का आयोजन किया गया ।

इस ऐतिहासिक तबसिरे के बाद मौलाना मौदूदी साहब ने बयान किया कि मुसलमानों में आम तौर से जो तहरीकें उठती रही हैं, और इस वक़्त

जो चल रही हैं, पहले उनके और इस तहरीक के उसूली फ़र्क़ को दिमाग़ में बैठा लेना चाहिए—

1. उनमें या तो इस्लाम के किसी हिस्से को या मुसलमानों के दुनियावी मक़सदों में से किसी मक़सद को लेकर तहरीक की बुनियाद बनाया गया है । लेकिन हम ऐन इस्लाम और असल इस्लाम को लेकर उठ रहे हैं और पूरे का पूरा इस्लाम ही हमारी तहरीक है ।

2. उनमें ज़माअती तंज़ीम दुनिया की मुख़तलिफ़ अंजुमनों और पार्टियों के ढंग पर की गई है, मगर हम ठीक वही जमाअती निज़ाम इख़तियार कर रहे हैं जो शुरू में अल्लाह के रसूल (सल्ल०) की क़ायम की हुई जमाअत का था ।

3. उनमें हर क़िस्म के आदमी इस बुनियाद पर भरती कर लिए गए हैं कि जब ये मुसलमान क़ौम में पैदा हुए हैं तो मुसलमान ही होंगे । इसका नतीजा यह हुआ कि अरकान (सदस्यों) से लेकर कारकुनों (कार्यकर्त्ताओं) और लीडरों तक बड़ी तादाद में ऐसे लोग उन जमाअतों के निज़ाम में घुस गए जो अपनी सीरत (कैरेक्टर) के एतिबार से एतिमाद के क़ाबिल न थे और किसी ज़िम्मेदारी को निभाने के लायक़ भी न थे । लेकिन हम किसी शख़्स को इस बुनियाद पर नहीं लेते कि वह मुसलमान 'होगा', बल्कि जब वह कलिमा तय्यबा के माने व मतलब और तक़ाज़ों को जानकर उसपर ईमान लाने का इक़रार करता है तब उसे जमाअत में लेते हैं—और जमाअत में आने के बाद उसके जमाअत में रहने के लिए इस बात को लाज़िमी शर्त ठहरा देते हैं कि इस्लाम में जो कम से कम ईमान के तक़ाज़े हैं, उन्हें पूरा करे । इस तरह इंशाअल्लाह मुसलमान क़ौम में से सिर्फ़ अच्छी सीरत व किरदार के लोग ही छँटकर जमाअत में आएँगे, और जो सालेह (नेक) बनता जाएगा, इस जमाअत में दाख़िल होता जाएगा ।

4. उन तहरीकों की नज़र भारत तक, और भारत में भी सिर्फ़ मुस्लिम क़ौम तक, सीमित रही है । किसी ने व्यापकता अपनाई तो ज़्यादा से ज़्यादा बस इतनी कि दुनिया के मुसलमानों तक नज़र फैला दी । मगर बहरहाल ये तहरीकें सिर्फ़ उन लोगों तक महदूद (सीमित) रहीं जो पहले से 'मुस्लिम क़ौम' में शामिल हैं, और उनकी दिलचस्पियाँ भी उन्हीं मसलों तक सीमित

हैं, जिनका ताल्लुक़ मुसलमानों से है । उनके कामों में कोई ऐसी चीज़ शामिल नहीं रही है जो ग़ैर मुस्लिमों को अपील करनेवाली हो, बल्कि अमलन उनमें से अक्सर की सरगर्मियाँ ग़ैर मुस्लिमों के इस्लाम की तरफ़ आने में उल्टे रुकावट बन गई हैं ।

लेकिन हमारे लिए चूँकि ख़ुद इस्लाम ही तहरीक है और इस्लाम की दावत तमाम दुनिया के इनसानों के लिए है, इसलिए हमारी नज़र किसी ख़ास क़ौम या किसी ख़ास मुल्क के मख़सूस वक़्ती मसाइल में उलझी हुई नहीं है, बल्कि पूरी मानव-जाति और पूरी दुनिया पर फैली हुई है । तमाम इनसानों की ज़िन्दगी के मसाइल, हमारी ज़िन्दगी के मसाइल हैं । अल्लाह की किताब (क़ुरआन) और उसके रसूल (सल्ल०) की सुन्नत (हदीस) से हम जीवन की समस्याओं का ऐसा हल पेश करते हैं जिसमें सबकी कामयाबी और सबके लिए भलाई हो । इस तरह हमारी जमाअत में न सिर्फ़ पैदाइशी मुसलमानों में से अच्छे लोग खिंचकर आएँगे, बल्कि नस्ली ग़ैर मुस्लिमों में भी जो ख़ुशनसीब रूहें मौजूद हैं, वे भी इंशाअल्लाह इसमें खिंची चली आएँगी ।

इस वज़ाहत के बाद मौलाना मौदूदी साहब ने फ़रमाया कि यही ख़ुसूसियात हैं जिनकी बिना पर हम अपनी इस जमाअत को 'इस्लामी जमाअत' और इस तहरीक को इस्लामी तहरीक कहते हैं । क्योंकि जब उसका अक़ीदा, नस्बुलऐन, निज़ामे-जमाअत और तरीक़ेकार बिना किसी कमी-बेशी के वही है जो इस्लाम का हमेशा रहा है, तो इसके लिए इस्लामी जमाअत के सिवा कोई दूसरा नाम नहीं हो सकता । और जब यह ऐन इस्लाम के नस्बुलऐन की तरफ़ इस्लामी तरीक़े पर ही काम करती है तो इसकी तहरीक, इस्लामी तहरीक के सिवा कुछ नहीं है । मगर नुबूवत के ज़माने के बाद जब कभी ऐसी कोई तहरीक दुनिया में उठी है, उसे दो ज़बरदस्त अन्दरूनी ख़तरे पेश आए हैं :

एक यह कि ऐसी जमाअत बनने और ऐसी तहरीक लेकर उठने के बाद बहुत जल्द लोग इस ग़लतफ़हमी में पड़ गए हैं कि उनकी जमाअत की हैसियत वही है जो नबियों के ज़माने में इस्लामी जमाअत की थी । दूसरे शब्दों में यह कि जो उस जमाअत में नहीं, वह मोमिन नहीं है और 'जो

सामूहिकता से अलग रहा उसे आग में डाला जाएगा ।' यह चीज़ बहुत जल्द उस जमाअत को मुसलमानों का एक फ़िरक़ा बनाकर रख देती है और फिर उसका सारा वक़्त अमली काम के बजाए दूसरे मुसलमानों से उलझने और मुनाज़रे (वाद-विवाद) करने में खप जाता है ।

दूसरे यह कि ऐसी जमाअतें जिसको अपना अमीर या इमाम मान लेती हैं, उसके बारे में उनको यह ग़लतफ़हमी हो जाती है कि उसकी वही हैसियत है जो नबी (सल्ल०) के बाद ख़ुल्फ़ा-ए-राशिदीन[1] की थी, यानी जो उस इमाम के हाथ पर बैअत न करे और उसे न माने, वह इस्लाम के दायरे से ख़ारिज है । और इस ग़लतफ़हमी का नतीजा यह होता है कि आख़िरकार उनकी सारी दौड़-धूप बस अपने अमीर या इमाम की अमारत, सदारत व इमामत मनवाने पर केन्द्रित हो जाती है ।

मौलाना मौदूदी साहब ने कहा कि हमें इन दोनों ख़तरों से बचकर चलना है । अच्छी तरह समझ लीजिए कि हमारी हैसियत बिलकुल उस जमाअत की-सी नहीं है जो शुरू में नबी की क़यादत व रहनुमाई में बनती है, बल्कि हमारी सही हैसियत उस जमाअत की है जो असल निज़ामे जमाअत के छिन्न-भिन्न हो जाने के बाद उसे ताज़ा करने की कोशिश करती है । नबी के नेतृत्व और रहनुमाई में जो जमाअत बनती है वह तमाम दुनिया में एक ही इस्लामी जमाअत होती है और उसके दायरे से बाहर सिर्फ़ कुफ़्र ही होता है । मगर बाद में उस निज़ाम और उस काम को ताज़ा करने के लिए जो लोग उठें, ज़रूरी नहीं कि उन सबकी भी एक ही जमाअत हो । ऐसी जमाअतें एक ही वक़्त में बहुत-सी हो सकती हैं, और उनमें से किसी को भी यह कहने का हक़ नहीं कि बस हम ही इस्लामी जमाअत हैं और हमारा अमीर (प्रमुख) ही अमीरुल-मोमिनीन है ।

इस मामले में उन तमाम लोगों को जो हमारी जमाअत में शामिल हों ग़ुलू (अति) से सख़्त परहेज़ करना चाहिए, क्योंकि बहरहाल हमें मुसलमानों में एक 'फ़िरक़ा' नहीं बनना है, ख़ुदा हमें इससे बचाए कि हम उसके दीन

---

1. हुज़ूर (सल्ल०) के चारों ख़लीफ़ा क्रमशः ये हैं : हज़रत अबू बक्र (रज़ि०), हज़रत उमर (रज़ि०), हज़रत उस्मान (रज़ि०), हज़रत अली (रज़ि०) । आगे चलकर ये ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन कहलाए।

के लिए कुछ काम करने के बजाए उलटे ख़राबियाँ पैदा करने का सबब बन जाएँ ।''

इसके बाद मौलाना मौदूदी ने फ़रमाया कि जमाअत इस्लामी के लिए दुनिया में करने का जो काम है, उसका कोई महदूद तसव्वुर (सीमित परिकल्पना) अपने ज़ेहन में क़ायम न कीजिए । दरअसल इसके लिए काम का कोई एक ही मैदान नहीं है, बल्कि पूरी इनसानी ज़िन्दगी अपनी तमाम व्यापकताओं और पहलुओं के साथ उसके अमल के दायरे में आती है । इस्लाम तमाम इनसानों के लिए है और हर चीज़ जिसका इनसान से कोई ताल्लुक़ है, उसका इस्लाम से भी ताल्लुक़ है । इसलिए इस्लामी तहरीक एक बहुमुखी और सार्वभौमिक (हमहगीर) तहरीक है और यह ख़याल करना ग़लत है कि इस तहरीक में काम करने के लिए सिर्फ़ ख़ास क़ाबिलियतों और ख़ास इल्मी मेयार के आदमियों ही की ज़रूरत है । नहीं, यहाँ हर इनसान के लिए काम मौजूद है, कोई इनसान बेकार नहीं है । जो शख़्स जो क़ाबिलियत भी रखता हो, उसके लिहाज़ से वह इस्लाम की ख़िदमत में अपना हिस्सा अदा कर सकता है । औरत, मर्द, बूढ़े, जवान, देहाती, शहरी, किसान, मज़दूर, ताजिर, मुलाज़िम, मुक़र्रिर, लेखक, अदीब, अनपढ़, बड़े आलिम-फ़ाज़िल सभी समान रूप से कारआमद और मुफ़ीद हो सकते हैं, बशर्ते कि वे जान-बूझकर इस्लाम के अक़ीदे को अपना लें । उसके मुताबिक़ अमल करने का फ़ैसला कर लें— और उस मक़सद को जिसे इस्लाम ने मुसलमानों का नस्बुलऐन क़रार दिया है, अपनी ज़िन्दगी का मक़सद बनाकर काम करने के लिए तैयार हो जाएँ । अलबत्ता यह बात हर उस शख़्स को, जो जमाअत इस्लामी में आए, अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जो काम इस जमाअत के सामने है वह कोई हल्का और आसान काम नहीं है । इसे दुनिया के पूरे निज़ामे ज़िन्दगी को बदलना है । इसे दुनिया के व्यवहार, राजनीति, सभ्यता, अर्थव्यवस्था, सामाजिकता हर चीज़ को बदल डालना है ।

दुनिया में जो निज़ामे हयात (जीवन-व्यवस्था) ख़ुदा से बग़ावत पर क़ायम है, उसे बदलकर ख़ुदा की इताअत पर क़ायम करना है और इस काम में तमाम शैतानी ताक़तों से इसकी जंग है । इसको अगर कोई हल्का काम

समझकर आएगा तो बहुत जल्द मुश्किलों के पहाड़ अपने सामने देखकर उसकी हिम्मत टूट जाएगी । इसलिए हर शख़्स को क़दम आगे बढ़ाने से पहले अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि वह किस काँटों भरे रास्ते पर क़दम रख रहा है । यह वह रास्ता नहीं है, जिसमें आगे बढ़ना और पीछे हट जाना दोनों एक जैसे हों । नहीं, यहाँ पीछे हटने के माने इर्तिदाद (इस्लाम से पलटने) के हैं । इसका यह मतलब नहीं कि इस जमाअत से निकलना इर्तिदाद के हममानी (समानार्थी) है, बल्कि असल मतलब यह है कि ख़ुदा के रास्ते में क़दम आगे बढ़ाने के बाद मुश्किलें, मुसीबतें, नुक़सान और ख़तरे को सामने देखकर पीछे हट जाना अपनी रूह और हक़ीक़त के एतिबार से इर्तिदाद (इस्लाम से फिर जाना) है ।

> "जिसने ऐसे मौक़े पर पीठ फेरी—सिवाय इसके कि जंगी चाल के तौर पर ऐसा करे या किसी दूसरी फ़ौज से जा मिलने के लिए—तो वह अल्लाह के ग़ज़ब में घिर जाएगा, उसका ठिकाना जहन्नम होगा, और वह बहुत बुरी पलटने की जगह है । —क़ुरआन, 8:16

इसलिए क़दम उठाने से पहले ख़ूब सोच-समझ लीजिए, जो क़दम बढ़ाएँ, इस हौसले के साथ बढ़ाएँ कि अब यह क़दम पीछे नहीं पड़ेगा । जो शख़्स अपने अन्दर ज़रा भी कमज़ोरी महसूस करता हो, बेहतर है कि वह इसी वक़्त रुक जाए ।

आख़िर में मौलाना मौदूदी साहब ने फ़रमाया कि इस इजतिमा के आयोजन का मक़सद यह है कि जो लोग इस्लामी अक़ीदे को जान-बूझकर क़बूल करें और उसके नस्बुलऐन के लिए काम करने पर तैयार हों, वे अपनी निजी हैसियत को ख़त्म करके अल्लाह और रसूल (सल्ल०) की हिदायत के मुताबिक़ एक जमाअत बन जाएँ और आपसी मशविरों से जमाअती तरीक़े पर आइंदा काम करने के लिए एक निज़ाम (कार्यशैली) बना लें । मेरा काम आपको एक जमाअत बना देने के बाद पूरा हो जाता है । मैं सिर्फ़ एक दाओ (आवाहक) था, भूला हुआ सबक़ याद दिलाने की कोशिश कर रहा था और मेरी तमाम कोशिशों का मक़सद यह था कि एक जमाअती निज़ाम बन जाए । जमाअत बन जाने के बाद मैं आपमें का एक फ़र्द (व्यक्ति) हूँ । अब यह जमाअत का काम है कि अपने में से ज़्यादा योग्य आदमी

को अपना अमीर चुने और फिर उस अमीर का काम है कि आइंदा उस तहरीक को चलाने के लिए अपने विवेक और सूझ-बूझ के मुताबिक़ एक प्रोग्राम बनाए और उसे अमल में लाए ।

मेरे बारे में किसी को यह ग़लतफ़हमी न होनी चाहिए कि जब दावत मैंने दी है तो आइंदा इस तहरीक की रहनुमाई को भी मैं अपना ही हक़ समझता हूँ । हरगिज़ नहीं, न मैं इसका ख़्वाहिशमंद हूँ, न इस नज़रिए का क़ायल हूँ कि दाओ को ही आख़िरकार लीडर भी होना चाहिए । न मुझे अपने बारे में यह गुमान है कि इस अज़ीमुश्शान तहरीक का लीडर बनने की अहलियत मुझमें है और न इस काम की भारी ज़िम्मेदारियों को देखते हुए कोई अक़्ल रखनेवाला आदमी यह नादानी कर सकता है कि इस बोझ के अपने कंधों पर लादे जाने की ख़ुद तमन्ना करे । दरअसल मेरी दिली तमन्ना अगर कुछ है तो वह सिर्फ़ यह है कि एक सही इस्लामी निज़ामे जमाअत मौजूद हो और मैं उसमें शामिल हूँ । इस्लामी निज़ामे जमाअत के तहत एक चपरासी की हैसियत से ख़िदमत अंजाम देना मेरी नज़र में इससे ज़्यादा क़ाबिले फ़ख़्र है कि किसी ग़ैर इस्लामी निज़ाम में सदर (राष्ट्रपति) और वज़ीरे आज़म (प्रधानमंत्री) का पद मुझे मिले । लिहाज़ा इस बात को ज़रूरी मानकर न चलिए कि जिस तरह जमाअत की तशकील (गठन) से पहले सारे काम मैं अपनी ज़िम्मेदारी में चलाता रहा हूँ, उसी तरह जमाअत की तशकील के बाद भी मैं ही आपसे आप इसके प्रमुख (अमीर) का काम अपने हाथ में ले लूँगा । जमाअत बन जाने के बाद मेरी अब तक की हैसियत ख़त्म हो जाती है । आइंदा के काम की पूरी ज़िम्मेदारी जमाअत की तरफ़ मुंतक़िल हो जाती है और जमाअत अपनी तरफ़ से इस ज़िम्मेदारी को जिसके भी सुपुर्द करने का फ़ैसला करे उसकी बात मानना उसकी ख़ैरख़्वाही करना उसके साथ सहयोग करना जमाअत के हर व्यक्ति की तरह मेरा भी फ़र्ज़ होगा ।

इस ज़रूरी और आरम्भिक तक़रीर के बाद मौलाना मौदूदी ने जमाअत के दस्तूर (संविधान) का मुसव्वदा पढ़ना शुरू किया । इस मुसव्वदे की कुछ कापियाँ पहले ही छपवा ली गई थीं और सारे आनेवालों को इजतिमा से एक दिन पहले दे दी गई थीं, ताकि वे इसपर अच्छी तरह ग़ौर कर

लें। इजतिमा-ए-आम में इसके मुताल्लिक़ हर शख़्स को अपनी राय ज़ाहिर करने का पूरा-पूरा मौक़ा दिया गया, इसका एक-एक लफ़्ज़ पढ़ा गया और उसपर बहस हुई। क़रीब-क़रीब मग़रिब के वक़्त यह जलसा ख़त्म हुआ। दर्मियान में सिर्फ़ दोपहर के खाने और ज़ुह्र व अस्र की नमाज़ों के लिए जलसा मुल्तवी (स्थगित) किया गया था। बहरहाल, शाम के आते-आते हर ज़रूरी मसले ग़ौर-फ़िक्र के बाद तय हो चुके थे। दस्तूर कुछ कमी-बेशी के बाद पूरा का पूरा सर्वसम्मति से पास हो गया।

इसके बाद सबसे पहले मौलाना मौदूदी साहब उठे और कलिम-ए-शहादत "अश-हदु अल्ला इला-ह इल्लल्लाहु व अश-हदु अन-न मुहम्मदर्रसूलुल्लाह" पढ़ा और कहा कहा कि लोगो! गवाह रहो कि मैं आज नए सिरे से ईमान लाता हूँ और जमाअत इस्लामी में शरीक होता हूँ। इसके बाद मौलाना मुहम्मद मंज़ूर नोमानी साहब खड़े हुए और उन्होंने भी मौलाना मौदूदी साहब की तरह ईमान की तजदीद (फिर से ताज़ा करने) का एलान किया। इसके बाद हाज़िर लोगों में से बारी-बारी हर शख़्स उठा, कलिम-ए-शहादत अदा किया और जमाअत में शरीक हुआ। अक्सर हज़रात की आँखों में आँसू थे। बल्कि कुछ लोगों पर तो रोते-रोते बेहोशी-सी छा गई थी। लगभग हर शख़्स कलिमा शहादत अदा करते वक़्त ज़िम्मेदारी के एहसास से काँप रहा था। जब लोग शहादत अदा कर चुके तो मौलाना मौदूदी साहब ने एलान किया कि अब जमाअत इस्लामी की तश्कील हो गई है, आइए, हम सब मिलकर रब्बुल आलमीन से दुआ करें कि वह हमारी जमाअत को साबित क़दम और अपनी जगह अटल रहने की और हमें अपनी किताब (क़ुरआन) और अपने रसूल (सल्ल०) की सुन्नत (हदीस) के मुताबिक़ चलने की तौफ़ीक़ दे।

दुआ से पहले मौलाना मौदूदी साहब ने इस्लामी जमाअत की हैसियत, उसकी मंशा और नस्बुलऐन पर फिर एक मर्तबा रौशनी डाली और हाज़िरीन को आगाह किया कि उन्होंने आज कितना बड़ा वादा किया है और उसे किस तरह निभाना चाहिए। इसके बाद मौलाना मंज़ूर नोमानी साहब ने दुआ की। देर तक लोग ख़ुदा के हुज़ूर में रोते-गिड़गिड़ाते रहे, आख़िर में मौलाना मौदूदी साहब ने एक मुख़्तसर-सी दुआ पढ़ी और जलसा बर्ख़ास्त

हुआ ।

तीसरी श'अबान : सुबह आठ बजे फिर इजतिमा शुरू हुआ । सबसे पहले मौलाना मौदूदी साहब ने एक-एक रुक्ने जमाअत को अलग-अलग बुलाकर उनसे पूछा कि वे अपने आपको जमाअत के किस तबक़े (वर्ग) के लिए पेश करते हैं । फिर जब जमाअत के अरकान (मेम्बरों) की तबक़ेबार लिस्ट मुकम्मल हो गई तो मौलाना मौदूदी साहब तक़रीर के लिए उठे और हाज़िरीन से फ़रमाया :

"जो लोग एक ही अक़ीदा, एक ही नस्बुलऐन और एक ही मस्लक रखते हों, उनके लिए एक जमाअत बन जाने के सिवा कोई चारा नहीं—और उनका एक जमाअत बन जाना बिलकुल एक फ़ितरी बात है । कलिमे के एक होने का लाज़िमी नतीजा इत्तिहाद और सामूहिकता है । बिखराव सिर्फ़ उस जगह होता है जहाँ कलिमा अलग-अलग हो । कलिमा के एक होने के बावजूद ख़ुदग़रजी और निहित स्वार्थों की वजह से जो फिरक़ाबन्दी फैलती है, उसकी वजह भी दरअसल यह होती है कि नफ़्सानियत ख़ुद एक कलिमा है जो इस्लामी कलिमे का प्रतिरोधी और मुख़ालिफ़ है और जो इस कलिमे में आस्था (यक़ीन) रखता है वह बाक़ी तमाम मामलों में दूसरों से सहमति होने के बावजूद अपना रास्ता अलग बनाता है । तो जब आपने कल शहादत अदा की कि आप सब एक ही अक़ीदा, एक ही नस्बुलऐन और एक ही राहे अमल रखते हैं, यानी आपका कलिमा एक है तो आप ख़ुदबख़ुद एक जमाअत बन गए । और मैं अल्लाह की पनाह माँगता हूँ इससे कि मुझ़ में या आपमें से किसी में वह निहित स्वार्थ हो जो ग़ैर मोमिनाना तरीक़े पर चलने के लिए किसी को आमादा कर ले । अब जबकि आपकी जमाअती ज़िन्दगी की शुरूआत हो रही है, जमाअत को संगठित और मुनज़्ज़म करने की राह में कोई क़दम उठाने से पहले आपको यह समझ लेना चाहिए कि इस्लाम में जमाअती ज़िन्दगी के नियम क्या हैं । मैं इस सिलसिले में कुछ अहम बातें बयान करूँगा—

पहली चीज़ यह है कि जमाअत के हर फ़र्द को निज़ामे जमाअत का सामूहिक रूप से और जमाअत के लोगों का अलग-अलग तौर पर सच्चे दिल से ख़ैरख़्वाह होना चाहिए । जमाअत का बुरा चाहना या जमाअत

के लोगों से कीना, बुग़्ज़, हसद और बदगुमानी करना और उन्हें तकलीफ़ पहुँचाना ऐसे बदतरीन जुर्म हैं, जिनको अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल०) ने ईमान के ख़िलाफ़ क़रार दिया है ।

दूसरी चीज़ यह है कि आपकी इस जमाअत की हैसियत दुनियावी पार्टियों की-सी नहीं है, जिनका तरीक़ा यह होता है कि ''मेरी पार्टी हक़ पर हो या नाहक़ पर''—नहीं, आपको जिस रिश्ते ने एक दूसरे से जोड़ा है, वह दरअसल अल्लाह पर ईमान का रिश्ता है और अल्लाह पर ईमान का सबसे पहला तक़ाज़ा यह है कि आपकी दोस्ती और दुश्मनी, मुहब्बत और नफ़रत, जो कुछ भी हो, अल्लाह के लिए हो । आपको अल्लाह की फ़रमाँबरदारी के कामों में एक दूसरे से सहयोग करना है, न कि अल्लाह की नाफ़रमानी के कामों में । अल्लाह का हुक्म है—

> ''नेकी और परहेज़गारी के कामों में एक दूसरे की मदद करो, बुराई और नाफ़रमानी के कामों में एक दूसरे से सहयोग न करो ।''
>
> —क़ुरआन, 5:2

अल्लाह की तरफ़ से जमाअत की ख़ैरख़्वाही का जो फ़र्ज़ आप पर आइद होता है, उसके मानी सिर्फ़ यही नहीं हैं कि बाहरी हमलों से आप उसकी हिफ़ाज़त करें, बल्कि यह भी है कि उन अंदरूनी बीमारियों से भी उसकी हिफ़ाज़त करने के लिए हर वक़्त चौकस रहें जो जमाअत के निज़ाम को ख़राब करनेवाली हैं । जमाअत की सबसे बड़ी ख़ैरख़्वाही यह है कि उसको सही रास्ते से हटने न दिया जाए । उसमें ग़लत मक़सद, ग़लत ख़यालों और ग़लत तरीक़ों के फैलने को रोका जाए । उसमें नफ़्सानी धड़ेबंदियाँ न पैदा होने दी जाएँ, उसमें किसी की तानाशाही न चलने दी जाए, उसमें किसी दुनियावी ग़रज़ या किसी शख़्सियत को बुत न बनने दिया जाए—और उसके दस्तूर को बिगड़ने से बचाया जाए । इसी तरह अपने रुफ़क़ा-ए-जमाअत की ख़ैरख़्वाही का जो फ़र्ज़ आपमें से हर शख़्स पर आइद होता है, उसके मानी हरगिज़ ये नहीं है कि आप अपनी जमाअत के आदमियों की बेजा हिमायत करें और उनकी ग़लतियों में उनका साथ दें, बल्कि इसके मानी ये हैं कि आप मारूफ़ (अच्छे और भले कामों) में उनके साथ सहयोग करें और मुन्कर (ग़लत और नापसंदीदा कामों) में सिर्फ़ असहयोग पर ही

बस न करें, बल्कि अमलन उनकी इस्लाह और सुधार की भी कोशिश करें । एक मोमिन दूसरे मोमिन के साथ सबसे बड़ी ख़ैरख़्वाही जो कर सकता है, वह यह है कि जहाँ उसे सही राह से भटकते हुए देखे, वहाँ उसे सीधा रास्ता दिखाए और जब वह अपने नफ़्स पर ज़ुल्म कर रहा हो तो उसका हाथ पकड़ ले । अलबत्ता आपसी इस्लाह और सुधार में यह बात ज़रूर सामने रहनी चाहिए कि नसीहत में ऐब ढूँढने, नुक़्ताचीनी करने और लड़ाई-झगड़े का तरीक़ा न हो, बल्कि दोस्ताना दर्दमंदी और ख़ुलूस व निष्ठा का तरीक़ा हो । जिसका आप सुधार करना चाहते हैं, उसे आपके तर्ज़े अमल और व्यवहार से यह महसूस होना चाहिए कि उसकी अख़लाक़ी बीमारी से आपका दिल दुखता है, न कि उसे अपने से कमतर देखकर आपका मग़रूर नफ़्स मज़े ले रहा है ।

तीसरी बात, जिसकी तरफ़ मैं अभी इशारा कर चुका हूँ मगर जिसकी अहमियत इस बात का तक़ाज़ा करती है कि उसे खुले तौर पर बयान किया जाए, यह है कि जमाअत के अन्दर जमाअत बनाने की कोशिश कभी न की जाए । साज़िशें, जत्थे बंदियाँ, पक्ष प्रचार (Convassing), ओहदों की उम्मीदवारी, जाहिलाना ख़ुद्दारी और नफ़्सानी रक़ाबतें व दुश्मनियाँ—ये वे चीज़ें हैं जो वैसे भी जमाअती ज़िन्दगी के लिए बहुत ख़तरनाक होती हैं, मगर इस्लामी जमाअत के मिज़ाज से तो इन चीज़ों का कोई जोड़ ही नहीं है । इसी तरह ग़ीबत, बुरे नाम से पुकारना और बदगुमानी भी जमाअती ज़िन्दगी के लिए बहुत नुक़सानदेह बीमारियाँ हैं, जिनसे बचने की हम सभी को कोशिश करनी चाहिए ।

चौथी बात यह है कि आपसी राय-मशविरे जमाअती ज़िन्दगी की जान हैं । इसे कभी नज़रअन्दाज़ न करना चाहिए । जिस शख़्स के सुपुर्द किसी जमाअती काम की ज़िम्मेदारी हो, उसके लिए ज़रूरी है कि अपने कामों में साथियों से मशविरा ले और जिससे मशविरा लिया जाए उसका फ़र्ज़ है कि नेकनीयती के साथ अपनी असल राय को साफ़-साफ़ ज़ाहिर करे । जो शख़्स इजतिमाई राय-मशविरों में अपनी समझ के मुताबिक़ राय देने से परहेज़ करता है, वह जमाअत पर ज़ुल्म करता है और जो किसी मस्लहत से अपने विवेक और अपनी समझ के ख़िलाफ़ राय देता है वह जमाअत

के साथ धोखा करता है । जो राय-मशविरे के मौक़े पर अपनी राय छुपाता है और बाद में जब उसकी मंशा के ख़िलाफ़ कोई बात तय हो जाती है तो जमाअत में बददिली फैलाने की कोशिश करता है, तो वह बदतरीन ख़यानत का मुजरिम है ।

पाँचवीं बात यह है कि जमाअती मशविरे में किसी शख़्स को अपनी राय पर इतना न अड़ना चाहिए कि या तो उसकी बात मानी जाए, वरना वह जमाअत से तआवुन (सहयोग) न करेगा या सर्वसहमति के ख़िलाफ़ अमल करेगा । कुछ नादान लोग नासमझी के सबब इसे हक़परस्ती समझते हैं, हालाँकि यह साफ़ तौर पर इस्लामी आदेशों और सहाबा किराम (रज़ि०) के सर्वमान्य व्यवहार के ख़िलाफ़ है । चाहे कोई मसला क़ुरआन व सुन्नत की ताबीर और व्याख्या से और किसी हुक्म के तार्किक नतीजे से ताल्लुक़ रखता हो या दुनियावी तदबीरों के मुताल्लिक़ हो—दोनों सूरतों में सहाबा किराम (रज़ि०) का तरीक़ा यह था कि जब तक मसला ज़ेरे बहस रहता, उसमें हर शख़्स अपने इल्म और अपने विवेक के मुताबिक़ पूरी सफ़ाइ से इज़हारे ख़याल करता और अपनी ताईद में दलीलें पेश करता था मगर जब किसी शख़्स की राय के ख़िलाफ़ फ़ैसला हो जाता तो वह य तो अपनी राय वापस ले लेता था या अपनी राय को दुरुस्त समझने वे बावजूद खुले दिल से सामूहिक और इजतिमाई फ़ैसले का साथ देता था जमाअती ज़िन्दगी के लिए यह तरीक़ा लाज़िमी है, वरना ज़ाहिर है, जह एक-एक शख़्स अपनी राय पर इतना इसरार करे कि जमाअती फ़ैसलों क क़बूल करने से इंकार कर दे तो वहाँ आख़िरकार पूरा जमाअती ढाँचा चरमराक रह जाएगा ।

आख़िरी चीज़ जो जमाअती ज़िन्दगी के लिए निहायत ज़रूरी है व यह है कि 'इस्लाम बग़ैर जमाअत के नहीं है और जमाअत बग़ैर अमी के नहीं है ।' इस बुनियादी उसूल के मुताबिक़ आपके लिए ज़रूरी है वि जमाअत बनने के साथ ही आप अपने लिए एक अमीर चुन लें । अमी के इन्तिख़ाब या चुनाव में आपको जिन बातों का ध्यान रखना चाहिए वे ये हैं कि कोई शख़्स जो अमीर बनने का उम्मीदवार हो उसे हरगि न चुना जाए, क्योंकि जिस शख़्स में इस भारी ज़िम्मेदारी का एहसास होगा

वह कभी इस बोझ को उठाने की ख़ुद ख़्वाहिश न करेगा—और जो इसकी ख़्वाहिश करेगा, वह दरअसल अपना असर बढ़ाने और सत्ता पर आसीन होने का ख़्वाहिशमंद होगा, न कि ज़िम्मेदारी संभालाने का । इसलिए अल्लाह की तरफ़ से उसकी मदद और ताईद कभी न होगी । इन्तिख़ाब के सिलसिले में लोग एक दूसरे से नेकनीयती के साथ विचार-विमर्श और राय-मशविरा कर सकते हैं, मगर किसी के हक़ में या किसी के ख़िलाफ़ कानाफूसी या दौड़धूप न होनी चाहिए ।

व्यक्तिगत हिमायत और पसंद के जज़बात को दिल से निकाल कर बेलाग तरीक़े से देखिए कि आपकी जमाअत में कौन ऐसा शख़्स है जिसके तक़्वा, क़ुरआन व सुन्नत का इल्म, दीनी बसीरत (विवेक और दूरदर्शिता), विवेकशीलता, मामलाफ़हमी और राहे ख़ुदा में दृढ़ता और इसतिक़ामत पर आप सबसे ज़्यादा एतिमाद कर सकते हैं । फिर जो भी ऐसा नज़र आए, अल्लाह पर भरोसा करके उसे चुन लीजिए— और जब आप उसे चुन लें तो उसकी ख़ैरख़्वाही, उसके साथ सच्चे दिल से भले कामों में उसकी पैरवी और मुन्कर (नापसन्दीदा) कामों में उसकी इस्लाह की कोशिश आपका फ़र्ज़ है ।

इसके साथ यह बात भी अच्छी तरह समझ लें कि इस्लामी जमाअत में अमीर की वह हैसियत नहीं है जो पश्चिमी लोकतन्त्र में सदर या राष्ट्रपति की होती है । पश्चिमी लोकतन्त्र में जो शख़्स सदर (अध्यक्ष) चुन लिया जाता है उसमें तमाम ख़ूबियाँ और गुण तलाश किए जाते हैं, मगर जो ख़ूबी नहीं तलाश की जाती वह दयानतदारी और ख़ौफ़े ख़ुदा की ख़ूबी है । बल्कि वहाँ चुनाव करने का तरीक़ा ही ऐसा है कि जो शख़्स उनमें सबसे ज़्यादा अय्यार-मक्कार और सबसे बढ़कर जोड़-तोड़ के फ़न में माहिर और जाइज़ व नाजाइज़ हर क़िस्म की तदबीरों से काम लेने में माहिर होता है, वही सत्ता में आ जाता है । इसलिए क़ुदरती बात है कि वे लोग ख़ुद अपने चुने हुए अध्यक्ष पर भरोसा नहीं कर सकते । वे हमेशा उसकी बेईमानी से असुरक्षित रहते हैं और अपने संविधान में तरह-तरह की पाबंदियाँ और रुकावटें लगा देते हैं, ताकि वह हद से ज़्यादा सत्ता प्राप्त करके निरंकुश शासक न बन जाए । मगर इस्लामी जमाअत का तरीक़ा यह है कि वह

सबसे पहले अपने अमीर (प्रमुख) के चुनाव में तक़्वा, परहेज़गारी और दयानतदारी ही को तलाश करती है और इस बिना (आधार) पर वह अपने मामलों को पूरे एतिमाद के साथ उसके सुपुर्द करती है । लिहाज़ा पश्चिमी लोकतांत्रिक दलों की नक़ल करते हुए आप अपने दस्तूर में अपने अमीर (प्रमुख) पर वह पाबंदियाँ लगाने की कोशिश न कीजिए जो आमतौर से वहाँ अध्यक्ष पर लगाई जाती हैं । अगर आप किसी को ख़ुदातर्स और ईमानदार पाकर उसे अमीर बनाते हैं तो उसपर एतिमाद कीजिए और अगर आपके नज़दीक किसी की दयानतदारी और ख़ुदातर्सी इतनी संदिग्ध हो कि आप उसपर एतिमाद नहीं कर सकते तो उसे सिरे से मुंतख़ब ही न कीजिए ।

इस तक़रीर के बाद अमीर के इन्तिख़ाब के मसले पर राय-मशविरा शुरू हुआ और तीन अलग-अलग नज़रिए पेश किए गए, जिन पर दोपहर तक बहस होती रही और किसी सर्वसम्मत फ़ैसले पर ख़त्म न हो सकी । कुछ लोगों का ख़याल यह था कि फ़िलहाल वक़्ती तौर पर किसी मुतय्यन मुद्दत के लिए अमीर चुन लिया जाए, क्योंकि अव्वल तो अभी हमारी जमाअत में इतने कम लोग हैं कि इन्तिख़ाब की कुछ ज़्यादा गुंज़ाइश ही नहीं है । अगर हम इस वक़्त अपनी छोटी-सी जमाअत में से किसी ज़्यादा लायक़ शख़्स को स्थायी रूप से चुन लेंगे तो बाद में जब जमाअत बढ़ेगी और योग्यतम (अहलतरीन) लोग आएँगे, उस वक़्त मुश्किल पेश आएगी ।

दूसरे यह मुट्ठीभर जमाअत अगर इस वक़्त अपना मुस्तक़िल अमीर मुंतख़ब कर ले तो बाहर जो बहुत-से लोग हमारे नज़रिए और मक़्सद से मुत्तफ़िक़ हैं, उन्हें जमाअत में आने में इस बिना पर संकोच होगा कि इस जमाअत में दाख़िल होने के साथ उन्हें ख़ुद ब ख़ुद उस अमीर को भी तस्लीम कर लेना पड़ेगा, जिसके इन्तिख़ाब में उनकी राय का दख़ल न था । इस तरह हमारा अमीर चुनना आगे चलकर जमाअत के फैलाव में एक ज़बरदस्त रुकावट बन जाएगा—और उसका नतीजा यह होगा कि एक बड़ी जमाअत बनने के बजाए अलग-अलग जमाअतें बनने लगेंगी और बहुत-से नेतृत्व उभर कर सामने आएँगे ।

कुछ लोगों का ख़याल था कि इस वक़्त सिरे से अमीर चुना ही न जाए, बल्कि चन्द आदमियों की एक मजलिस को इन्तिज़ाम और रहनुमाई

के इख़्तियार दे दिए जाएँ और इस मजलिस के लिए एक सदर (अध्यक्ष) मुंतख़ब कर लिया जाए। इस नज़रिए को पेश करनेवाले लोगों के संदेह भी उसी जैसे थे जिनका ज़िक्र ऊपर आ चुका है। उनका यह भी कहना था कि अभी कोई ऐसा "मर्दे कामिल" नज़र नहीं आता जो नबियों की जानशीनी के क़ाबिल हो।

कुछ लोगों का ख़याल यह था कि जमाअत बिना अमीर तो बिलकुल बेअसल चीज़ है, रहा मुतय्यन मुद्दत के लिए अमीर का चुनाव तो वह एक ग़ैर इस्लामी तरीक़ा है जिसका कोई निशान हमें क़ुरआन व सुन्नत में नहीं मिलता। इसके अलावा यह बात भी हिक्मत के ख़िलाफ़ है कि एक ओर तो हम वह इन्तिहाई इन्क़िलाबी नज़रिया लेकर उठ रहे हैं, जो तमाम दुनिया की शैतानी ताक़तों के लिए एक प्रकार से एलाने जंग है और दूसरी तरफ़ हम ख़ुद ही अपनी जमाअत के निज़ाम को इतना सुस्त और ढीला रखें कि वह किसी बड़ी जिद्दोजुहद में साबित व क़ायम न रह सकता हो। यह ज़ाहिर है कि अमीर के बग़ैर या आरज़ी तौर से चुने गए अमीर की बुनियाद पर जो संगठन बनाया जाएगा, वह हरगिज़ पुख़्ता न होगा। लिहाज़ा यह ज़रूरी है कि अमीर का चुनाव इसी वक़्त किया जाए और अनिश्चित काल के लिए किया जाए।

कई घंटे की बहस के बाद भी जब इस मसले में इत्तिफ़ाक़े राय से कोई बात तय न हो सकी तो आख़िरकार ज़ुह्र के वक़्त यह तय हुआ कि इस मसले को सात आदमियों की एक कमेटी के सुपुर्द कर दिया जाए और जो कुछ वह कमेटी तय करे उसे सभी क़बूल कर लें। चुनांचे तीनों तरह के लोगों ने इत्तिफ़ाक़े राय से निम्न लोगों को चुना—

1. मौलाना मुहम्मद मंज़ूर साहब नोमानी, संपादक अलफ़ुरक़ान,(बरेली)
2. सैयद सिब्ग़तुल्लाह साहब बख़्तियारी (उस्ताद तफ़सीर जामिया दारुस्सलाम उमराबाद, अरकाट, मद्रास)
3. सैयद मुहम्मद जाफ़र साहब फुलवारी (इमाम,जामा मस्जिद,कपूरथला)
4. नज़ीरुल ख़ल्क़ साहब मेरठी (लायलपुर)
5. मिस्त्री मुहम्मद सिद्दीक़ साहब (सुल्तानपुर, लोदी)

6. डॉ० सैयद नज़ीर अली साहब ज़ैदी (इलाहाबाद)

7. मुहम्मद इब्ने अली साहब अल्वी (काकोरवी, लखनऊ)

इस कमेटी ने ख़ूब ग़ौर और विचार-विमर्श के बाद सर्वसहमति से वह प्रस्ताव तैयार किया जो लफ़्ज़ ब लफ़्ज़ जमाअत इस्लामी के दस्तूर की दफ़ा नम्बर 10 में पाया जाता है। इस प्रस्ताव का जायज़ा लेने से निम्न मामलों पर रौशनी पड़ती है—

1. पहले गिरोह की इस राय को रद्द कर दिया गया कि अमीर का चुनाव वक़्ती हो।

2. दूसरे गिरोह की भी यह राय क़बूल नहीं की गई कि अमीर का चुनाव न किया जाए और सिर्फ़ इन्तिज़ामी कामों के लिए एक कमेटी बना दी जाए।

3. तीसरे गिरोह की इस राय से इत्तिफ़ाक़ किया गया कि क़ुरआन व सुन्नत और हिक्मते अमली (पॉलीसी) दोनों का तक़ाज़ा यही है कि जमाअत बिना अमीर न रहे और अमीर का चुनाव किसी निश्चित समय के लिए न हो।

4. पहले गिरोह के तमाम एतिराज़ों को इन दो वाक्यों से दूर कर दिया गया—

"अमीर की ख़ुदातरसी और उसकी ज़िम्मेदारी के एहसास से यह उम्मीद की जाएगी कि अपने से ज़्यादा लायक़ और क़ाबिल आदमी के आ जाने पर वह ख़ुद उसके लिए जगह ख़ाली कर देगा, साथ ही ऐसी सूरत में जबकि जमाअत अपने नस्बुलऐन के लिए ज़रूरत महसूस करे, वह अमीर को अपदस्थ (माज़ूल) करने की भी अधिकारी होगी।"

5. दूसरे गिरोह के एतिराज़ को इस तरह दूर किया गया—

"जमाअत की नज़र में चुनाव के वक़्त जो शख़्स भी उल्लिखित सिफ़ात, तक़्वा, इल्मे दीन में गहराई, सूझबूझ, हिम्मत, हौसला और मुस्तैदी के लिहाज़ से ज़्यादा बेहतर होगा, उसे वह अमीर चुनेगी।

चार बजे शाम को जब दोबारा इजतिमा हुआ तो मौलाना मुहम्मद मंज़ूर नोमानी साहब ने चयन समिति की ओर से इस तजवीज़ को पढ़कर सुनाया

और संक्षेप में उसका स्पष्टीकरण किया । जमाअत ने इत्तिफ़ाक़े राय से उसे क़बूल कर लिया और तय क़िया कि यह पूरी तजवीज़ दसवीं दफ़ा (धारा) की हैसियत से दस्तूर में बढ़ा दी जाए । इसके बाद आम इत्तिफ़ाक़े राय से लोगों ने मौलाना अबुल आला मौदूदी साहब को अपना अमीर चुन लिया ।

'बैअत' का रस्मी तरीक़ा नहीं अपनाया गया, बल्कि पूरी जमाअत ने एक साथ यह अहद किया कि उपरोक्त स्पष्टीकरण के तहत वे अमीर की पैरवी और उसके हुक्म की पाबंदी करेंगे । इस 'बैअते आम' की अदायगी पर फिर वही कैफ़ियत पैदा हो गई जो एक रोज़ पहले 'तजदीदे ईमान' के मौक़े पर पैदा हो चुकी थी । लोग फिर ख़ुदा के सामने रोए और गिड़गिड़ाए और दुआ की कि वह इस जमाअत को उसके नस्बुलऐन (लक्ष्य) के मुताबिक चलने की तौफ़ीक़ दे ।

आख़िर में अमीरे जमाअत ने खड़े होकर मुख़्तसर तक़रीर की, जिसमें कहा कि मैं आपके दरमियान न सबसे ज़्यादा इल्म रखनेवाला था, न सबसे ज़्यादा मुत्तक़ी, न ही किसी और ख़ुसूसियत में मुझे बरतरी हासिल थी । बहरहाल जब आपने मुझपर एतिमाद करके इस भारी ज़िम्मेदारी का भार सौंप दिया है, तो मैं अब अल्लाह से दुआ करता हूँ और आप लोग भी दुआ करें कि अल्लाह मुझे इस ज़िम्मेदारी को सँभालने की ताक़त दे और आपके इस एतिमाद को मायूसी में तबदील न होने दे । मैं अपनी हद तक आख़िरी कोशिश करूँगा कि इस काम को पूरी ख़ुदातर्सी और पूरी एहसासे ज़िम्मेदारी के साथ चलाऊँ । मैं जान-बूझकर अपने फ़र्ज़ को अंजान देने में कोई कोताही न करूँगा । मैं अपने इल्म की हद तक अल्लाह की किताब, रसूल की सुन्नत और ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन (रज़ि०) के नक़्शे-क़दम पर चलने में कोई कसर न उठा रखूँगा । फिर भी अगर मुझसे कोई भूल-चूक हो और आपमें से कोई महसूस करे कि मैं सही रास्ते से हट गया हूँ तो मुझपर यह गुमान न करे कि मैं जान-बूझकर ऐसा कर रहा हूँ, बल्कि नेक-नीयती से काम लेकर और नसीहत से मुझे सुधारने की कोशिश करे ।

आपका मुझपर यह हक़ है कि मैं अपने आराम व आसाइश और अपने निजी फ़ायदों पर जमाअत के फ़ायदे और उसके काम की ज़िम्मेदारियों

को तरजीह दूँ। जमाअत के नज़्म (व्यवस्था) की हिफ़ाजत करूँ, अरकाने जमाअत के दरमियान इंसाफ़ और ईमानदारी के साथ बरताव करूँ, जमाअत की तरफ़ से जो अमानतें मेरे सुपुर्द हों उनकी हिफ़ाज़त करूँ—और सबसे बढ़कर यह कि अपने दिल व दिमाग़ और जिस्म की तमाम ताक़तों को उस मक़सद की ख़िदमत में लगा दूँ जिसके लिए आपकी जमाअत उठी है। आपका मुझपर यह हक़ है कि जब तक मैं सही रास्ते पर चलूँ, आप इसमें मेरा साथ दें, मेरे हुक्म की पैरवी करें, नेक मशविरों से हर संभव मदद और सहयोग से मेरा समर्थन करें और जमाअत के नज़्म (व्यवस्था) को बिगाड़नेवाले तरीक़ों से परहेज़ करें।

मुझे इस तहरीक की बड़ाई और ख़ुद अपनी कमियों का पूरा एहसास है। मैं जानता हूँ कि यह वह तहरीक है जिसकी क़यादत बड़े अज़्म व हौसला रखनेवाले पैग़म्बरों ने की है—और नुबूवत का ज़माना गुज़र जाने के बाद वे ग़ैर मामूली इनसान इसे लेकर उठते रहे हैं, जो इनसानी नस्ल के बेहतरीन नमूने थे। मुझे एक लम्हे के लिए भी अपने बारे में यह ग़लतफ़हमी नहीं हुई है कि मैं इस अज़ीमुश्शान तहरीक की क़यादत (नेतृत्व) के योग्य हूँ। बल्कि मैं तो इसे एक बदक़िस्मती समझता हूँ कि इस वक़्त इस बहुत बड़े काम के लिए आपको मुझसे बेहतर कोई आदमी न मिला। मैं आपको यक़ीन दिलाता हूँ कि अपने नेतृत्व के फ़र्ज़ को निभाने के साथ मैं बराबर तलाश में रहूँगा कि कोई ज़्यादा योग्य आदमी इस ज़िम्मेदारी को उठाने के लिए मिल जाए। और जब मैं ऐसे आदमी को पा लूँगा तो ख़ुद सबसे पहले उसके हाथ पर बैअत करूँगा। साथ ही, मैं हमेशा हर आम इजतिमा के मौक़े पर जमाअत से भी दरख़्वास्त करता रहूँगा कि अगर अब उसने कोई मुझसे बेहतर आदमी पा लिया हो तो वह उसे अपना अमीर चुन ले और मैं इस मंसब से बख़ुशी अलग हो जाऊँगा।

बहरहाल, मैं इंशाअल्लाह ख़ुद अपने आपको कभी ख़ुदा के रास्ते में रुकावट न बनने दूँगा और किसी को यह कहने का मौक़ा न दूँगा कि एक नाक़िस आदमी इस जमाअत की रहनुमाई कर रहा है इसलिए हम इसमें शामिल नहीं हो सकते। नहीं, मैं कहता हूँ कि कामिल आदमी आए और यह मक़ाम जो आपने मेरे सुपुर्द किया है, हर वक़्त उसके लिए ख़ाली

हो सकता है । अलबत्ता मैं इसके लिए तैयार नहीं हूँ कि अगर कोई दूसरा आदमी इस काम को चलाने के लिए न उठे तो मैं भी न उठूँ । मेरे लिए तो यह तहरीक ऐन मक़सदे ज़िन्दगी है । मेरा मरना और जीना इसी के लिए है । कोई इसपर चलने के लिए तैयार हो या न हो, बहरहाल, मुझे तो इसी राह पर चलना और इसी राह में जान देना है । कोई आगे न बढ़ेगा तो मैं बढ़ूँगा, कोई साथ न देगा तो मैं अकेला चलूँगा । सारी दुनिया एकजुट होकर मुख़ालिफ़त करेगी तो मुझे अकेले उससे लड़ने में भी डर नहीं है ।

आख़िर में एक बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि फ़िक़्ह और कलाम (मीमांसा) के मसाइल में मेरी एक ख़ास सोच (मसलक) है, जिसे मैंने अपनी स्वयं की छानबीन की बुनियाद पर इख़तियार किया है और पिछले आठ वर्षों के दौरान जो लोग तर्जुमानुल क़ुरआन को पढ़ते आ रहे हैं, वे इसे जानते हैं । अब जबकि मेरी हैसियत इस जमाअत के अमीर की हो गई है तो मेरे लिए यह बात साफ़ कर देनी ज़रूरी है कि फ़िक़्ह और कलाम के मसाइल में जो कुछ मैंने पहले लिखा है और जो कुछ आइंदा लिखूँगा या कहूँगा, उसकी हैसियत अमीरे जमाअत इस्लामी के फ़ैसले की न होगी, बल्कि मेरी ज़ाती राय की होगी ।

मैं न तो यह चाहता हूँ कि इन मसाइल में अपनी राय को जमाअत के दूसरे अहले इल्म व तहक़ीक़ पर थोपूँ और न इसी को पसंद करता हूँ कि जमाअत की तरफ़ से मुझपर ऐसी कोई पाबंदी लगाई जाए कि मुझसे इल्मी तहक़ीक़ और राय ज़ाहिर करने की आज़ादी छिन जाए । जमाअत के अरकान (सदस्यों) को मैं अल्लाह तआला का वास्ता देकर हिदायत करता हूँ कि कोई शख़्स फ़िक़्ही व कलामी मसाइल में मेरी राय को दूसरों के सामने क़तई दलील के तौर पर पेश न करे । इसी तरह मेरे ज़ाती अमल को भी जिसे मैंने अपनी तहक़ीक़ की बुनियाद पर जायज़ समझकर अपनाया है, न तो दूसरे लोग उसे हुज्जत बनाएँ और न बिना तहक़ीक़ महज़ मेरा अमल होने की हैसियत से उसकी पैरवी करें । इन मामलों में हर शख़्स के लिए आज़ादी है । जो लोग इल्म रखते हों, वे अपनी तहक़ीक़ पर और जो इल्म न रखते हों, वे जिसके इल्म पर एतिमाद रखते हों, उसकी

तहक़ीक़ पर अमल करें ।

इन मामलात में मुझसे अलग राय रखने और अपनी राय ज़ाहिर करने में भी सब आज़ाद हैं । हम सब बहुत छोटे-छोटे, मामूली, कम अहमियत के मसाइल (जुज़ईयात व फ़ुरूअ) में मतभेद रखते हुए एक दूसरे के मुक़ाबले बहस व तर्क करते हुए भी एक जमाअत बनकर रह सकते हैं जिस तरह सहाबा किराम (रज़ि०) रहते थे ।

चौथी श'अबान : पिछली शाम को अमीरे जमाअत ने मजलिसे शूरा के लोगों का चुनाव कर लिया था । आज सुबह आठ बजे मजलिसे शूरा का पहला इजलास हुआ और तहरीक के भविष्य और जमाअत की कार्य-पद्धति (लाएहे अमल) पर सोच-विचार किया गया । काफ़ी ग़ौर व फ़िक्र और बहस-मुबाहिसे के बाद जो कुछ तय हुआ, वह आगे पेश किया जा रहा है ।

तक़सीमे कार

(कार्य-विभाजन)

फ़िलहाल जमाअत के काम को निम्न विभागों (शोबों) में बाँटा गया है—

(1) बौद्धिक व शैक्षिक विभाग (शोब-ए-इल्मी व तालीमी)

इस विभाग का काम यह होगा कि—

इस्लाम के निज़ामे फ़िक्र (चिन्तन प्रणाली) और निज़ामे हयात (जीवन-व्यवस्था) का उसके विभिन्न दार्शनिक, बौद्धिक और ऐतिहासिक पहलुओं से गहरा तफ़सीली अध्ययन करे, दुनिया की दूसरी विभिन्न व्यवस्थाओं पर भी गहरी आलोचनात्मक और शोधपरक (तन्क़ीदी और तहक़ीकी) नज़र डाले और अपनी तहक़ीक़ के नतीजों को एक ऐसे ज़बरदस्त लिट्रेचर की शक्ल में पेश करे जो न सिर्फ़ इस्लामी उसूल पर ज़ेहनी व फ़िक्री इन्क़िलाब बरपा करनेवाला हो, बल्कि इस्लामी निज़ाम के अमलन क़ायम होने के लिए भी ज़मीन तैयार कर सके ।

एक ऐसा तालीमी नज़रिया और तालीमी निज़ाम तैयार करे जो इस्लाम के मिज़ाज से ठीक-ठीक मुनासिबत रखता हो और दुनिया में इस्लामी इन्क़िलाब बरपा करने के लिए बुनियाद का काम दे सके । इस सिलसिले में दुनिया के राइज तालीमी नज़रियों और निज़ामों का भी आलोचनात्मक और शोधपरक अध्ययन करना होगा ।

अपने तालीमी नज़रिए के मुताबिक़ पाठ्यक्रम (निसाबे तालीम) और शिक्षक तैयार करे और फिर एक दर्सगाह क़ायम करके आइंदा नस्ल की ज़ेहनी और अख़लाक़ी तरबियत का क़ाम शुरू कर दे । एक ऐसी तरबियतगाह (ट्रेनिंग सेंटर) क़ायम करे जो दुनिया में इस्लामी इन्क़िलाब बरपा करने के लिए बेहतरीन कारकुन (कार्यकर्त्ता) तैयार करे । तीन साल पहले 'दारुल इस्लाम' के नाम से जो संस्था क़ायम की गई थी, उसका जमाअत इस्लामी के इस विभाग में विलय कर दिया गया है । फ़िलहाल यह विभाग मरकज़

में अमीरे जमाअत की निगरानी में रहेगा । बाद में यदि मुमकिन हुआ तो उसकी शाखाएँ बाहर भी ऐसे अनेक स्थानों पर क़ायम कर दी जाएँगी जहाँ ऐसे एक विभाग की रहनुमाई करने के लिए मुनासिब लोग मौजूद होंगे ।

जमाअत के तमाम कारकुनों और ख़ास तौर पर मक़ामी जमाअतों के अमीरों का फ़र्ज़ होगा कि जहाँ-जहाँ इस शोबे में काम करने की अहलियत रखनेवाले लोग मिलें, उनके बारे में ज़रूरी जानकारी अमीरे जमाअत को पहुँचाएँ । साथ ही मुक़ामी जमाअतों को इस तरफ़ भी ध्यान देना होगा कि अपने हल्क़े से जिस व्यक्ति या व्यक्तियों को वे इल्मी शोबे के लिए मरकज़ में भेजें उनकी आजीविका का इन्तिज़ाम स्थानीय तौर पर करने की कोशिश करें । इसके अलावा मक़ामी जमाअतें इस शोबे के काम में इस तरह भी मदद कर सकती हैं कि उसके पुस्तकालय के लिए हर इल्म व फ़न (ज्ञान-विज्ञान) की मेयारी किताबें हासिल करने की कोशिश करें ।

(2) प्रचार-प्रसार विभाग (शोब-ए-नश्र व इशाअत)

शोब-ए-इल्मी व तालीमी से जो लिट्रेचर (साहित्य) तैयार किया जाए उसे फैलाने का काम इस शोबे (विभाग) के सुपुर्द होगा । इसका फ़र्ज़ होगा कि जमाअत के लिट्रेचर को जहाँ तक मुमकिन हो, ख़ुदा के बन्दों तक पहुँचाने की कोशिश करे । इस शोबे के लिए ऐसे कार्यकर्ताओं की ज़रूरत है जो प्रचार व प्रसार के काम में महारत रखते हों । साथ ही इस शोबे को ऐसे आदमियों की भी ज़रूरत है जो सफ़र करके विभिन्न स्थानों पर जा सकें और अनेक हल्क़ों में ज़ंबानी तबलीग़ भी करें और अपना लिट्रेचर भी फैलाएँ ।

फ़िलहाल यह शोबा भी मरकज़ में अमीरे जमाअत की निगरानी में रहेगा । बाद में कोशिश की जाएगी कि बाहर भी अनेक स्थानों पर ज़िम्मेदार लोगों की निगरानी में प्रचार-प्रसार के छोटे-छोटे सेंटर क़ायम कर दिए जाएँ, जहाँ से अख़बार, रिसाले, पम्फ़लेट्स और किताबों की शक्ल में जमाअत की नुमाइंदगी करनेवाला लिट्रेचर छप सके ।

हर जगह जमाअत इस्लामी के अरकान के लिए और मक़ामी जमाअतों के लिए इस शोबे के साथ सहयोग करने की दो सूरतें हैं—एक यह कि

जो लोग छपाई के काम, या प्रचार-प्रसार के तरीक़ों में महारत रखते हों या अच्छे सफ़री मुबल्लिग़ बन सकते हों या तिजारती पहलू में इस शोबे को कामयाब बनाने की क़ाबिलियत रखते हों, वे अपनी ख़िदमत पेश करें और मक़ामी अमीर इस क़िस्म की सलाहियतें रखनेवाले लोगों की इत्तला नाज़िमे शोबा नश्र व इशाअत (प्रचार व प्रसार) को दें। दूसरे यह कि हर जगह मक़ामी जमाअत एक रीडिंग रूम और बुक डिपो क़ायम करे जिसमें इदारे की किताबें जमा की जाएँ, जो लोग पढ़ना चाहें वे रीडिंग रूम में उनका अध्ययन करें और जो ख़रीदना चाहें वे बुक डिपो से किताबें ख़रीद लें।

संगठन विभाग (शोब-ए-तंज़ीमे जमाअत) :

इस शोबे की ज़िम्मेदारियाँ ये होंगी—

कारकुनों (कार्यकर्ताओं) को हिदायतें देना, जहाँ मक़ामी जमाअतें बन गई हों वहाँ के काम की निगरानी करना, उनसे रिपोर्ट तलब करना और उनको मशविरे देना। जहाँ जमाअत के अरकान (मेम्बर) इक्का-दुक्का मौजूद हों वहाँ मक़ामी जमाअतें बनाने की कोशिश करना। जो व्यक्ति, संस्थाएँ या जमाअतें अक़ीदे और नस्बुलऐन में इस जमाअत से मुत्तफ़िक़ हों उनसे सम्पर्क क़ायम करने की कोशिश करना। तहरीक की रफ़्तार का जायज़ा लेते रहना और उसे आगे बढ़ाने की तदबीरें अमल में लाना।

इस शोबे का सदर दफ़्तर मरकज़ में अमीरे जमाअत के मातहत होगा। बाहर उसकी तीन शाखाएँ निम्न हलक़ों में क़ायम की गई हैं—

1. मेरठ, बरेली, आगरा और लखनऊ डिवीज़न के लिए सदर मक़ाम बरेली है, जहाँ मौलाना मुहम्मद मंज़ूर नोमानी साहब, संपादक 'अलफ़ुरक़ान' नायब अमीर की हैसियत से काम करेंगे।

2. इलाहाबाद, बनारस, गोरखपुर, फ़ैज़ाबाद डिवीज़न और बिहार राज्य के लिए सदर मक़ाम सराय मीर ज़िला आज़मगढ़ है, जहाँ मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही नायब अमीर होंगे।

3. सूबा मद्रास और दक्षिण के लिए सदर मक़ाम उमराबाद ज़िला उत्तरी अरकाट है, जहाँ मौलाना सैयद सिबग़तुल्लाह साहब बख़्तियारी उस्ताद

तफ़्सीरे जामिया दारुस्सलाम, नायब अमीर होंगे ।

4. अम्बाला और जालंधर डिवीज़न के लिए सदर मक़ाम कपूरथला है जहाँ सय्यद मुहम्मद जाफ़र साहब फुलवारी, ख़तीब जामा मस्जिद कपूरथला नायब अमीर होंगे ।[1]

उपरोक्त हलक़ों में जमाअत के जो अरकान अलग-अलग रहते हों या जो मक़ामी जमाअतें बनी हुई हों, वे तमाम मामलों में अपने-अपने हलक़े के नायब अमीर की तरफ़ रुजू करें और इन हलक़ों के अलावा दूसरे स्थानों पर जो लोग या जमाअतें हों, वे फ़िलहाल मरकज़ी दफ़्तर से ताल्लुक़ रखें । बाद में और नए हल्क़े क़ायम करने और नायबों को मुक़र्रर करने की कोशिश की जाएगी ।

वित्त विभाग (शोब-ए-मालियात)

इदारा 'दारुल-इस्लाम' के हिसाबात 31 अगस्त 1941 ई० तक ख़त्म करके जमाअत इस्लामी की तरफ़ मुंतक़िल कर दिए गए थे और जमाअत का मरकज़ी बैतुलमाल क़ायम कर दिया गया, जो सीधे तौर पर अमीरे जमाअत के मातहत रहेगा । साथ ही हर जगह की मक़ामी जमाअतों के लिए तय किया गया कि हर जमाअत अपना मक़ामी बैतुलमाल (कोष) क़ायम करके स्थानीय ज़रूरतों को स्थानीय आमदनी से पूरा करे । अपना सहमाही (त्रैमासिक) हिसाब अपने हल्क़े के नायब अमीर को या कोई हल्क़ा न होने की सूरत में अमीरे जमाअत को भेजती रहे—और जब मरकज़ी बैतुलमाल को मदद की ज़रूरत हो तो अमीरे जमाअत की तरफ़ से हुक्म आने पर अपनी जमा रक़में भेज दे ।

इस वक़्त आमदनी का सबसे बड़ा ज़रिया 'इदारा दारुल-इस्लाम' से प्रकाशित होनेवाली किताबें हैं और उनके प्रसार पर ही जमाअत के काम की तरक़्क़ी निर्भर है । इस मद की सारी आमदनी मरकज़ी बैतुलमाल (जमाअत के केन्द्रीय कोष) में आनी चाहिए । दूसरी मद ज़कात है । तमाम अरकाने

---

1. बाद में सिवाए दक्षिणी भारत के बाक़ी तमाम हल्क़े तोड़ दिए जैसा कि रूदादे मजलिसे शूरा (शव्वाल 1361 हिजरी) से ज़ाहिर होगा ।

जमाअत जो साहिबे निसाब हों (ज़कात देना जिनके लिए अनिवार्य हो) वे अपनी ज़कात मक़ामी जमाअत (जमाअत की स्थानीय इकाई) के बैतुल माल में दाख़िल करें या मक़ामी जमाअत मौजूद न हो तो मरकज़ में भेजें। तीसरी मद इआनत (सहयोग) की रक़में हैं। जमाअत के ख़ुशहाल अरकान का फ़र्ज़ है कि ज़्यादा से ज़्यादा जितनी माली इमदाद कर सकते हों, करें और जमाअत को आर्थिक हैसियत से मज़बूत बनाएँ। रहे जमाअत से बाहर के लोग तो उनसे कोई मदद न माँगी जाए, अलबत्ता अगर वे अपनी ख़ुशी से और बिना शर्त स्वयं मदद करना चाहें तो क़बूल कर ली जाए। लेकिन कोई बड़ी से बड़ी माली इआनत भी इस सूरत में क़बूल न की जाए जबकि यह अंदेशा हो कि उसके बदले में जमाअत की पॉलिसी पर असर डालने की कोशिश की जाएगी।

यहाँ मुनासिब मालूम होता है कि जमाअत की मौजूदा माली पोज़ीशन भी ज़ाहिर कर दी जाए। 1938 ई० में जब इदारा 'दारुल इस्लाम' क़ायम किया गया था तो मौलाना अबुल आला मौदूदी साहब (मौजूदा अमीरे जमाअत) ने अपनी तमाम किताबें (अल-जिहाद फ़िल-इस्लाम और रिसाला दीनियात उर्दू, अंग्रेज़ी के आलावा) इदारे के लिए वक़्फ़ कर दी थीं। 7 जनवरी, 1939 ई० को 132 रुपये के सरमाये से काम शुरू किया गया। उस वक्त से 31 अगस्त, 1941 ई० तक आमद व ख़र्च (आय-व्यय) की तफ़सील इस तरह है—

आमदनी

किताबों की बिक्री	3948 रु०	15 आना	6 पाई
ज़कात	130 रु०		
इआनत अह्ले ख़ैर (सहायता)	638 रु०	12 आना	
योग	4717 रु०	11 आना	6 पाई
मूल पूँजी	132 रु०		
कुल योग	4849 रु०	11 आना	6 पाई
कुल आमदनी	4849 रु०	11 आना	6 पाई
कुल ख़र्च	4774 रु०	13 आना	6 पाई
बाक़ी (शेष)	74 रु०	14 आना	

ख़र्च

किताबों की छपाई	3200 रु०	3 आना	6 पाई
डाक ख़र्च	590 रु०	4 आना	9 पाई
मुलाज़मीन की तनख़्वाह	480 रु०		
सफ़र ख़र्च	135 रु०	13 आना	3 पाई
आवास ख़र्च	125 रु०	1 आना	
ज़कात की मद से ख़र्च	63 रु०		
अन्य ख़र्च	36 रु०	11 आना	
स्टेशनरी	27 रु०	3 आना	6 पाई
पहले इजतिमा का ख़र्च	116 रु०	8 आना	6 पाई
योग	4774 रु०	13 आना	6 पाई

इसके आलावा इदारे (संस्था दारुल-इस्लाम) की जो रक़में उपरोक्त तारीख़ तक अनेक ताजिरों और एजेंटों के ज़िम्मे वाजिबुल अदा (देय) थीं, वह कुल मिलाकर 1356 रु० 2 आना थी और जो किताबें इदारे के दफ़्तर में 31 अगस्त, 1941 ई० को मौजूद थीं उनकी क़ीमत का अनुमान 2014 रु० है ।

आह्वान और प्रचार विभाग (शोब-ए-दावत व तबलीग़)

यह इस जमाअत का सबसे अहम विभाग है । दरअसल जमाअत की कामयाबी ही इस विभाग की कारगुज़ारी पर निर्भर करती है । हर शख़्स जो जमाअत इस्लामी का रुक्न हो, लाज़िमी तौर पर इस शोबे का रुक्न होगा । उसको हमेशा-हमेश एक मुबल्लिग़ (प्रचारक) की ज़िन्दगी बसर करनी होगी । उसके लिए ज़रूरी होगा कि ज़हाँ जिस हल्क़े में भी उसकी पहुँच हो सकती हो, जमाअत के अक़ीदे को फैलाए, उसके नस्बुलऐन (लक्ष्य) की तरफ़ दावत दे और जमाअत के निज़ाम की तशरीह (स्पष्टीकरण) करे ।

मगर दावत व तबलीग़ की मस्लहतों के लिहाज़ से यह ज़रूरी मालूम हुआ कि काम करने के लिए आठ अलग-अलग हलक़े तय कर दिए जाएँ और जमाअत का हर रुक्न अपनी सलाहियतों के लिहाज़ से सिर्फ़ उन्हीं हल्क़ों में तबलीग़ करे जिनके लिए वह ज़्यादा मुनासिब हो । ये हल्क़े इस तरह हैं—

1. कॉलेजों और आधुनिक शिक्षा प्राप्त लोगों का हलक़ा
2. उलमा और अरबी मदरसों का हलक़ा
3. सूफ़ियों और मशाइख़ (रूहानी मशाइख़) का हल्क़ा
4. सियासी पार्टियों का हल्क़ा
5. शहरी अवाम का हल्क़ा
6. देहाती अवाम का हल्क़ा
7. औरतों का हल्क़ा
8. ग़ैर मुस्लिमों का हल्क़ा

हर कारकुन (कार्यकर्ता) को अपने बारे में ठीक-ठीक अंदाज़ा करन
चाहिए कि वह इनमें से किस हल्के या किन हल्कों में तबलीग़ के क़ाबिल
है । जिन हल्कों में काम करने की अहलयित वह अपने अन्दर न महसूस
करता हो या तजुर्बे से उसे मालूम हो जाए कि वह फलाँ हल्कों में नाकाम
रहेगा, उनमें तबलीग़ करने से उसे परहेज़ करना चाहिए ताकि वह लोग
को क़रीब लाने के बजाए दूर फेंक देने का कारण न बन जाए ।

तबलीग़ के सिलसिले में जो मुश्किलें पेश आएँ, उनमें रहनुमाई के लि
मक़ामी अमीरों, नायबों या ख़ुद अमीरे जमाअत से रुजू किया जाए ।

हिदायतें

उपरोक्त कार्य पद्धति तय होने के बाद 4 शाबान ही को फिर आम
इजतिमा हुआ, जिसमें अमीरे जमाअत ने इजतिमा में मौजूद लोगों को कार्य
पद्धति की तफ़सीलात से आगाह किया और फिर काम करने के लिए निम्न
हिदायतें दीं—

1. हर वह बस्ती जहाँ दो आदमी ऐसे मौजूद हों जो जमाअत इस्लामी में
दाख़िल हो चुके हों, वहाँ ज़रूरी है कि मक़ामी जमाअत बना ली जाए
और दोनों में से एक ज़्यादा बेहतर और नेक आदमी मक़ामी अमीर चुन
जाए और अमीरे जमाअत को इत्तिला देकर उसके चुनाव की मंज़ूरी हासिल
की जाए । इसी तरह जहाँ दो से ज़्यादा आदमी जमाअत में शरीक हों
वहाँ भी बिना किसी निजी स्वार्थ या हित के किसी ऐसे आदमी को मक़ामी
अमारत के लिए नामज़द किया जाए जो ज़्यादा नेक सीरत, शरीअत का
पाबन्द, मामले की सूझबूझ रखनेवाला और तहरीके इस्लामी के मिज़ाज
को समझनेवाला हो और जिसे बस्ती के लोग आम तौर पर इज़्ज़त की
निगाह से देखते हों । लेकिन मक़ामी लोगों का किसी को चुन लेना मक़ामी
अमीर के पद के लिए काफ़ी न होगा, जब तक कि अमीरे जमाअत उसकी
नियुक्ति की इजाज़त न दे ।

2. अमीरे जमाअत अगर आम लोगों के हितों को देखते हुए किसी
को मक़ामी अमारत या किसी दूसरे मंसब पर मुक़र्रर न करे या किसी को

ाज़ूल (उसके पद से हटा) करके दूसरे को मुक़र्रर कर दे तो उसपर बुरा
मानना चाहिए। इस मामले में असल चीज़ नस्बुलऐन की ख़िदमत है,
कि व्यक्तिगत सम्मान और प्रतिष्ठा। जिस शख़्स को आपने अपनी
माअत का अमीर चुना है, उसपर भरोसा कीजिए कि वह जमाअत की
यादा बड़ी मस्लहतों के लिहाज़ ही से अपदस्थ और नियुक्ति करेगा।

3. जमाअत में जब कोई नया शख़्स दाख़िल हो तो उसे पूरा एहसासे
ज़िम्मेदारी दिलाकर नए सिरे से कलिमा शहादत अदा कराया जाए। इस
जदीदे ईमान (ईमान के ताज़ा करने)के माने यह नहीं हैं कि जो शख़्स
आज नए सिरे से कलिमा पढ़ रहा है, वह अब तक काफ़िर था और अब
स्लाम अपना रहा है, बल्कि इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि जो अहद
सके और ख़ुदा के दरमियान पहले से मौजूद था, आज वह उसे ताज़ा
और ख़ालिस मज़बूत कर रहा है। ईमान ताज़ा करने के मौक़े पर यह
ात हर नए दाख़िल होनेवाले रुक्न के ज़ेहन-नशीन कर देनी चाहिए कि
ह दरअसल ज़िन्दगी के एक नए अध्याय की शुरूआत है। आज से
ुम्हारी ज़िम्मेदाराना ज़िन्दगी की शुरुआत हो रही है। आज से तुम एक
नेज़ाम के पाबन्द मोमिन की हैसियत से अपनी ज़िन्दगी शुरू कर रहे हो।
आज से तुम्हारी ज़िन्दगी एक बामक़सद ज़िन्दगी बन रही है और तुम ख़ुदा
और मोमिनों को गवाह बना रहे हो कि तुम्हारी तमाम जिद्दोजुहद इस मक़सद
के लिए इस निज़ाम (व्यवस्था) की पाबन्दी में सर्फ़ होगी।

4. जो शख़्स जमाअत में दाख़िल हो उसे इस्लामी तहरीक के लिट्रेचर
का ज़्यादातर हिस्सा पढ़वा दिया जाए, ताकि वह इस तहरीक के तमाम
पहलुओं से वाक़िफ़ हो जाए और तहरीक के अरकान में ज़ेहनी और अमली
हमआहंगी (सामंजस्य) पैदा हो सके। इस मामले में किसी के बारे में यह
मानकर न चला जाए कि वह तो पहले ही से सब कुछ समझता होगा।
अगर इस सोच की बुनियाद पर ऐसें लोगों की बड़ी तादाद जमाअत में
दाख़िल कर ली गई, जो इस तहरीक के लिट्रेचर पर नज़र न रखते हों
तो अंदेशा है कि जमाअत के अरकान विरोधाभासी बातें और परस्पर एक
दूसरे से मेल न रखनेवाली हरकतें करेंगे। जो लोग तालीमयाफ़्ता (शिक्षित)
न हों, उन्हें ज़बानी तौर पर ज़रूरी बातें समझा दी जाएँ और तहरीक के

मिज़ाज के मुताबिक़ उनकी ज़ेहनियत तबदील करने की कोशिश की जाए इस मक़सद के लिए हर मक़ामी जमाअत में कम से कम दो ऐसे आदमियं का रहना ज़रूरी है, जिन्होंने ख़ूब गहरी नज़र से हमारे लिट्रेचर का अध्ययन किया हो ।

5. मक़ामी अमीर अपने हल्क़े की जमाअत के अरकान की सलाहियतें (योग्यताओं) का अलग-अलग जायज़ा लें और जो शख़्स जिस काम के क़ाबिल (योग्य) हो उसे वही काम सुपुर्द करें और बराबर देखते रहें कि वह अपने ज़िम्मे सुपुर्द किए गए काम को किस तरह अंजाम देता है इस मामले में हर जमाअत के रुक्न को ख़ुद भी उसकी कुव्वतों और क़ाबिलियतें का बेलाग अंदाज़ा लगाना चाहिए और अपने सरदार को बता देना चाहिए कि वह क्या काम कर सकता है और क्या नहीं कर सकता ।

6. हर जगह जहाँ मक़ामी जमाअत मौजूद हो, तमाम जमाअत के अरकान को जुमे के रोज़ सुबह या शाम या बाद जुमा एक जगह जमा होना चाहिए इस इजतिमा में हफ़्ते भर के काम का जायज़ा लिया जाए । आइंदा काम के लिए आपसी मशविरे से तजवीज़ें सोची जाएँ, बैतुलमाल के हिसाब देखे जाएँ और तहरीक के लिट्रेचर में कोई नई चीज़ छपी हो तो उसका अध्ययन किया जाए ।

7. जमाअत के अरकान को क़ुरआन, सुन्नत और सीरते सहाबा (रज़ि०) से ख़ास लगाव होना चाहिए । इन चीज़ों को बार-बार ज़्यादा गहरी नज़र से पढ़ा जाए और महज़ अक़ीदत (श्रद्धा) की प्यास बुझाने के लिए नहीं बल्कि हिदायत व रहनुमाई हासिल करने के लिए पढ़ा जाए । जहाँ ऐसा कोई आदमी मौजूद हो जो क़ुरआन के दर्स (पाठ) की सलाहियत रखता हो, वहाँ क़ुरआन का दर्स (पाठ) शुरू कर दिया जाए ।

8. इस तहरीक की जान दरअसल 'ताल्लुक़ बिल्लाह' (अल्लाह से ताल्लुक़) है । अगर अल्लाह से आपका ताल्लुक़ कमज़ोर हो तो आप हुकूमते इलाहिया (ईश्वरीय विधान) क़ायम करने और कामयाबी के साथ उसे चलाने के योग्य नहीं हो सकते । इसलिए फ़र्ज़ इबादतों के अलावा नफ़्ल इबादतों की भी पाबन्दी कीजिए । नफ़्ल नमाज़, नफ़्ल रोज़े और

सदक़ात वे चीज़ें हैं जो इनसान में ख़ुलूस पैदा करती हैं और इन इबादतों को ज़्यादा से ज़्यादा पोशीदा तरीक़े से करना चाहिए ताकि रिया (दिखावा) न पैदा हो। नमाज़ समझकर पढ़िए, इस तरह नहीं कि एक याद की हुई चीज़ को आप ज़बान से दोहरा रहे हैं, बल्कि इस तरह कि आप ख़ुद अल्लाह से कुछ अर्ज़ कर रहे हैं। नमाज़ पढ़ते वक़्त अपने नफ़्स का जायज़ा लीजिए कि जिन बातों का इक़रार आप आलिमुल ग़ैब (परोक्ष का ज्ञान रखनेवाला) के सामने कर रहे हैं, कहीं आपका अमल उसके ख़िलाफ़ तो नहीं है और आपका इक़रार झूठा तो नहीं है। अपने नफ़्स के इस मुहासबे (आत्म निरीक्षण) में अपनी जो कोताहियाँ आपको महसूस हों उनपर इस्तिग़फ़ार (तौबा) कीजिए और आइंदा इन ख़ामियों को दूर करने की कोशिश कीजिए।

इबादतों में इस बात का ख़याल रखिए कि जितना अमल आप लगातार पाबन्दी से कर सकते हों, बस उसी की पाबंदी की जाए। साथ हीं यह कि इबादत की उस तमाम जिद्दोजुहद, रियाज़त, शग़ल और वज़ाइफ़ से परहेज़ किया जाए जो सही हदीसों से साबित न हों। और हदीसों के सही होने के सिलसिले में मुहद्दिसीन (हदीस के फ़न के माहिर) ही सनद हो सकते हैं, न कि ग़ैर मुहद्दिसीन, चाहे वे बजाए ख़ुद कितनी ही बड़ी शख़्सियत के बुज़ुर्ग हों। ज़्यादा ख़तरनाक बिदअतें वे चीज़ें नहीं, जिनकी बुराई सब जानते हैं, बल्कि बज़ाहिर वे अच्छी चीज़ें ख़तरनाक़ हैं जिनको अच्छा समझकर शरीअत में इज़ाफ़ा कर लिया जाता है।

9. जमाअत के अरकान को ख़ूब समझ लेना चाहिए कि वे एक बहुत बड़ा दावा लेकर बहुत बड़े काम के लिए उठ रहे हैं। अगर उनकी सीरतें (चरित्र-आचरण) उनके दावे के मुक़ाबले में इतनी घटिया हों कि नुमायाँ तौर पर उनका घटिया होना महसूस होता हो तो वह अपने आपको और अपने दावे को मज़ाक़ बनाकर रख देंगे। इसलिए हर शख़्स को जो इस जमाअत में शामिल हो, अपनी दोहरी ज़िम्मेदारी महसूस करनी चाहिए। ख़ुदा के सामने तो वह बहरहाल ज़िम्मेदार है, मगर दुनिया के सामने भी उसकी ज़िम्मेदारी बहुत सख़्त है। जिस बस्ती में आप लोग मौजूद हों वहाँ आम आबादी से आपके अख़लाक़ बुलंदतर होने चाहिएँ। बल्कि आपको अख़लाक़ की बुलंदी, सीरत की पाकीज़गी और दयानत व अमानत

में बेहतरीन मिसाल बन जाना चाहिए । आपकी एक मामूली-सी भूलचूक भी न सिर्फ़ जमाअत के दामन पर, बल्कि इस्लाम के दामन पर धब्बा लाएगी और बहुत-से लोगों की गुमराही का सबब बन जाएगी ।

10. जमाअत के अरकान को ऐसे तमाम तरीक़ों से परहेज़ करना चाहिए जो उनको मुसलमानों में एक फ़िरक़ा (सम्प्रदाय) बनानेवाले हों । अपनी नमाज़ें आम मुसलमानों से अलग न पढ़िए, नमाज़ में अपनी जमाअत अलग न बनाइए । बहसें और मुनाज़रे न कीजिए । जहाँ तहक़ीक़ के लिए नहीं बल्कि ज़िद और मुख़ालिफ़त की बुनियाद पर इस तहरीक को बहस में लाया जाए वहाँ सब्र और धैर्य से काम लीजिए । ख़ास तौर पर जहाँ व्यक्तिगत रूप में मेरी ज़ात पर हमले किए जाएँ, वहाँ तो हरगिज़ बचाव न कीजिए । मैं न ख़ुद अपना बचाव करता हूँ और न अपने रफ़ीक़ों (साथियों) को चाहता हूँ कि वे इस फ़ज़ूल काम में अपना वक़्त और अपनी कुव्वतें बरबाद करें अलबत्ता जहाँ कोई शख़्स संजीदगी से तहक़ीक़ करना चाहता हो, वहाँ अपनी ताईद में तर्क दिया जा सकता है । मगर जब बहस में गर्मी आती महसूस हो तो बहस का सिलसिला बन्द कर दीजिए क्योंकि मुनाज़िरा (शास्त्रार्थ) वह बला है जिससे हज़ार फ़ितने पैदा होते हैं और कोई एक फ़ितना भी ख़त्म नहीं होता ।

11. इस्लामी तहरीक अपना एक ख़ास मिज़ाज रखती है और उसका एक ख़ास तरीक़-ए-कार है, जिसके साथ दूसरी तहरीकों के तरीक़े किसी तरह मेल नहीं खाते । जो लोग अब तक अनेक क़ौमी तहरीकों में हिस्सा लेते रहे हैं और जिनकी तबीयतें उन्हीं के तरीक़ों से मेल खाती रही हैं, उन्हें इस जमाअत में आकर अपने आपको बहुत कुछ बदलना होगा । जलसे और जुलूस, झण्डे और नारे, यूनीफ़ार्म और मुज़ाहरे (प्रदर्शन), रेज़्यूलूशन और बेलगाम तक़रीरें, गर्मागर्म तहरीरें और इस तरह की तमाम चीज़ें इन तहरीकों की जान हैं, मगर इस तहरीक के लिए जानलेवा ज़हर हैं । यहाँ का तरीक़-ए-कार क़ुरआन और सीरते मुहम्मदी (सल्ल०) और सहाबा (रज़ि०) की सीरतों से सीखिए और उसकी आदत डालिए । आपको ज़बान, क़लम या मुज़ाहरों (प्रदर्शनों) से अवाम पर जादू नहीं करना है कि उनके झुंड के झुंड आपके पीछे आ जाएँ और आप उन्हें हाँकते फिरें । आपको इनमें

हक़ीक़ते इस्लामी की पहचान पैदा करनी है और हक़ीक़त को पहचान लेने के बाद उनमें यह हिम्मत पैदा करनी है कि अपनी निजी ज़िन्दगी और आसपास के माहौल की इजतिमाई ज़िन्दगी को इस हक़ीक़त के मुताबिक़ बनाएँ और जो बातिल (असत्य) हो उसे मिटाने में जान व माल की बाज़ी लगा दें ।

लोगों के अन्दर यह गहरी तबदीली जादूगरी और शायरी से पैदा नहीं हुआ करती । आपमें से जो मुक़र्रिर (वक़्ता) हों, वे तक़रीर के पिछले अंदाज़ को बदलें और ज़िम्मेदार मोमिन की तरह जँची-तुली तक़रीर की आदत डालें और जो अहले क़लम हैं, उन्हें भी ग़ैर ज़िम्मेदाराना अन्दाज़े तहरीर को बदलकर उस आदमी की-सी तहरीर अपनानी चाहिए जो लिखते वक़्त यह एहसास रखता हो कि उसे अपने एक-एक लफ़्ज़ का हिसाब देना है ।

12. इस्लामी तहरीक में काम करने के लिए यह भी ज़रूरी है कि आपके आसपास जो हंगामे दुनियातलब लोगों ने बरपा कर रखे हैं और जिनका आपकी तहरीक के नस्बुलऐन से कोई ताल्लुक़ नहीं है, उनसे आप इतना बेताल्लुक़ होकर रहें कि गोया उनसे आपका कोई सरोकार नहीं है । आपको एसेम्बलियों, डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और उनके इलेक्शनों से, हिन्दु-मुसलमान-सिख वग़ैरह क़ौमों के नफ़्सियाती झगड़ों से, अनेक विभिन्न पार्टियों, मज़हबी फ़िरक़ों, मक़ामी क़बीलों और बिरादरियों के विवादों से बिलकुल किनाराकश रहना चाहिए । बिलकुल यकसू होकर अपने नस्बुलऐन के पीछे लग जाइए और दुनिया में जो कुछ हो रहा है, होने दीजिए । जो अमल ख़ुदा की राह में नहीं है उसमें लिप्त होकर आप अपना वक़्त और अपनी क़ुव्वतें बरबाद करेंगे, हालाँकि आपको अपने वक़्त और क़ुव्वतों का हिसाब देना है ।

13. अपने मस्लक की तबलीग़ में हिक्मत और अच्छी नसीहत को सामने रखिए । हिक्मत यह है कि आप सामनेवाले की ज़ेहनियत और मिज़ाज को समझें, उसकी ग़लतफ़हमी या गुमराही के असल वजह की पहचान करें और उसे ऐसे तरीक़े से नसीहत करें जो ज़्यादा से ज़्यादा उसके लिए मुनासिब हो । और अच्छी नसीहत यह है कि जिसपर आप तबलीग़ करें

उसके सामने आप अपने आपको दुश्मन और मुख़ालिफ़ की हैसियत से नहीं, बल्कि उसके हितैषी और दर्दमन्द की हैसियत से पेश करें और ऐसे बाइज़्ज़त, दिल में उतर जानेवाले मीठे अंदाज़ से सही रास्ते की तरफ़ दावत दें जो कम से कम तलख़ी पैदा करनेवाला हो ।

इसके साथ दो बातें और भी सामने रख़िए । एक यह कि जो शख़्स हिदायत से अपने आपको बेनियाज़ समझता हो और दुनिया की ज़िन्दगी में मस्त हो उसके पीछे न पड़िए, बल्कि जिसमें यह कैफ़ियत नज़र आए उसे छोड़ दीजिए दूसरे यह कि बेमौक़ा तबलीग़ न कीजिए । जब कोई शख़्स या कोई गिरोह भलाई की दावत सुनने और या किसी नसीहत को क़बूल करने के मूड में न हो, उस वक़्त उसे दावत देना या एक वक़्त में जितनी ख़ुराक वह क़बूल कर सकता हो उससे ज़्यादा ख़ुराक उसके अन्दर उतारने की कोशिश करना, ज़ोर-ज़बरदस्ती, मिन्नत-समाजत करना या सख़्ती या दया आदि तरीक़ों को बेमौक़ा इस्तेमाल करना बजाए फ़ायदेमंद होने के उल्टे ख़राब असर डालता है । कुछ लोग काम करने के जोश में इन हदों को नज़रअंदाज़ कर जाते हैं । हालाँकि इस्लाम एक हिकमत से भरा दीन है और उसके मुबल्लिग़ (प्रचारक) को हकीम (तत्त्वदर्शी) होना चाहिए ।"

ये हिदायात देने के बाद अमीरे जमाअत और शूरा (सलाहकार परिषद) के मेम्बर एक अलग कमरे में बैठ गए और अरकाने जमाअत को अलग-अलग बुलाकर हर एक के हालात और सलाहियतों के लिहाज़ से काम सौंपा । साथ ही जहाँ-जहाँ मक़ामी जमाअतें (लोकल यूनिटें) बन चुकी थीं, वहाँ के लिए अमीरों की नियुक्ति कर दी ।

पाँचवीं श'अबान : पिछले दिन का बाक़ी काम पूरा करके आम इजतिमा ख़त्म कर दिया गया । फिर अमीरे जमाअत ने शूरा के मेम्बरान के मशविरे से ये मामले तय किए—

1. जमाअत के अरकान में जो लोग अहले क़लम (लेखक) हों उन्हें चाहिए कि मुल्क के अख़बारों और रिसालों में जमाअत के नज़रिए को फैलाने और जमाअत के बारे में जो ग़लतफ़हमियाँ छप रही हैं, उनका जवाब

देने की बेहतर तरीक़े से कोशिश करें ।

2. जमाअत के अरकान का आम इजतिमा हर साल किया जाए जिसके लिए मौसम और दूसरे पहलुओं से मार्च का महीना मुनासिब रहेगा । आम इजतिमा के मौक़े पर जिन लोगों को अमीर जमाअत मुनासिब समझें या जिनके बारे में मक़ामी अमीर सिफ़ारिश करें, उन्हें एक महीने तक मरकज़ में तरबियत (प्रशिक्षण) के लिए रोक लिया जाए ।

3. जमाअत के कुछ चुनिन्दा अरकान जो हर एतिबार से जमाअत के मस्लक की बेहतरीन तर्जुमानी कर सकते हों, साल में एक बार वफ़्द या वुफ़ूद (प्रतिनिधिमण्डलों) की शक्ल में मुल्क के विभिन्न हिस्सों का दौरा करें और आम दावत के अलावा ख़ास तौर से मुल्क के बड़े-बड़े इदारों, कॉलेजों, यूनिवर्सिटियों, दीनी मदरसों और अंजुमनों में अपनी बात पहुँचाने की कोशिश करें ।

4. तय हुआ था कि एक साप्ताहिक अख़बार जमाअत की ओर से जारी किया जाए और इस काम के लिए अब्दुल्लाह मिस्री साहब नामज़द भी कर दिए गए थे । लेकिन अब नसरुल्लाह ख़ाँ साहब 'अज़ीज़' के जमाअत में शामिल हो जाने की वजह से इस तजवीज़ को तत्काल लागू करने की ज़रूरत नहीं रही । जमाअत की ज़रूरतों के लिए जनाब अज़ीज़ का अख़बार 'मुसलमान' (लाहौर) अब क़ाफ़ी होगा ।

रूदाद मजलिसे शूरा

(मुहर्रम,1361 हि०/1942 ई०)

जंग की वजह से देश में जो बेचैनी की हालत पैदा हो चुकी है, उसकी वजह से मुनासिब न समझा गया कि मार्च में जमाअत के अरकान के आम इजतिमा का आयोजन किया जाए। इसलिए अमीरे जमाअत ने नीचे लिखे लोगों को जो मजलिसे शूरा के मेम्बर थे, तलब किया, ताकि जिन मामलों का फ़ैसला होना है उनके मुताल्लिक़ मशविरा करके फ़ैसला किया जाए—

- मौलाना मुहम्मद मंज़ूर साहब नोमानी (बरेली)
- मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही (सरायमीर)
- मौलाना अबुल हसन अली साहब (लखनऊ)
- सैयद मुहम्मद जाफ़र साहब (कपूरथला)
- नज़ीरुल हक़ साहब (मेरठ)
- मुहम्मद अली साहब काँधलवी (सियालकोट)
- अब्दुल अज़ीज़ साहब शर्क़ी (जालंधर)
- नसरुल्लाह ख़ाँ साहब 'अज़ीज़' (लाहौर)
- चौधरी मुहम्मद अकबर साहब (लायलपुर)
- डा० सैयद नज़ीर अली साहब (इलाहाबाद)
- मिस्त्री मुहम्मद सिद्दीक़ साहब (दिल्ली)
- अब्दुल जब्बार साहब ग़ाज़ी (दिल्ली)
- क़मरुद्दीन ख़ाँ साहब (बंगाल)
- अताउल्लाह साहब (बंगाल)
- मुहम्मद बिन अली अल्वी साहब (भोपाल)
- मुहम्मद यूसुफ़ साहब (भोपाल)

26, 27, 28 फ़रवरी, 1942 ई० को शूरा के इजतिमा हुए। सबसे पहले तमाम शरीक होनेवालों ने अलग-अलग, तहरीक की आम रफ़्तार

और ख़ास तौर पर अपने-अपने इलाक़ों के काम की समीक्षा की, अपने तजुर्बात बयान किए और अपनी-अपनी मक़ामी जमाअतों के मशविरे से जो तजवीज़ें वे लेकर आए थे और काम को आगे बढ़ाने के लिए जिन चीज़ों की ज़रूरत को महसूस करते थे, उन्हें पेश किया । फिर अमीरे जमाअत ने एक तफ़सीली तक़रीर में जमाअत के अब तक के काम पर तबसिरा किया और बताया कि जमाअत के निज़ाम में क्या-क्या ख़ामियाँ पाई जाती हैं, उनके कारण क्या हैं, आइंदा के लिए जमाअत के निज़ाम को बेहतर बनाने और तहरीक को अच्छे ढंग से आगे ले चलने के लिए किन तदबीरों की ज़रूरत है और वे मुश्किलें क्या हैं जिनकी वजह से काम की रफ़्तार इतनी अच्छी नहीं है, जितनी होनी चाहिए थी । इसके बाद आपसी मशविरे से जो बातें इत्तिफ़ाक़ राय से तय हुईं वे ये हैं—

1. जमाअत का जायज़ा लेने से मालूम हुआ कि जमाअती निज़ाम में कुछ ऐसे लोग भी पाए जाते हैं जो ज़ेहनी तौर पर अभी तक यकसू नहीं हुए हैं और इस जमाअत के मस्लक और काम के तरीक़े को पूरी तरह समझे बग़ैर जमाअत में दाख़िल हो गए हैं, और उनसे कुछ ज़्यादा तादाद ऐसे अरकान की है जिनकी ज़िन्दगी में क़ाबिले इतमीनान तबदीली नहीं हुई है, या जिनके अन्दर अपने नस्बुलऐन के लिए काम करने का अन्दरूनी जज़्बा अभी इतना बेदार नहीं हुआ है कि वे किसी बाहरी दबाब के बग़ैर ख़ुद अपने दिल के जज़्बे के तक़ाज़े से काम करने में जुट जाएँ । इस कमी को दूर करने के लिए मक़ामी जमाअतों के अमीरों (अध्यक्षों) को नीचे लिखे पहलुओं पर ख़ास तवज्जोह करनी चाहिए—

एक, अरकाने जमाअत की तादाद में इज़ाफ़ा करने की ख़ातिर ख़ाम (कच्चे) या नीम पुख़्ता (अपरिपक्व) आदमियों की भर्ती न की जाए, बल्कि सिर्फ़ उन लोगों को जमाअत में लिया जाए जो जमाअत के मस्लक को अच्छी तरह समझ चुके हों, जिनके ख़यालात में गंदगी बाक़ी न रही हो और जिन्होंने जमाअत के दस्तूर (संविधान) की ज़िम्मेदारियों को भी समझ लिया हो ।

दूसरे यह कि आम तौर पर लोगों को जमाअत में शरीक होने की दावत न दी जाए, बल्कि उस अक़ीदे और नस्बुलऐन की तबलीग़ की जाए, जिसपर

यह जमाअत क़ायम हुई है । फिर उनमें से जो लोग इस हद तक मुतास्सिर हो जाएँ कि उनकी ज़िन्दगियों में अमलन तबदीली होनी शुरू हो जाए और वे ख़ुद तलाश करने लगें कि इस लक्ष्य के लिए काम करने का रास्ता क्या है, तब उनके सामने जमाअत का दस्तूर (संविधान) पेश किया जाए । और दस्तूर को देखकर जब वह जमाअत में शरीक होने की ख़ुद ख़्वाहिश करें तब भी उन्हें फ़ौरन जमाअत में दाख़िल न कर लिया जाए, बल्कि उन्हें बार-बार सोचने का मौक़ा दिया जाए—और जब वे ख़ूब सोच-समझकर जमाअत में शरीक होने का फ़ैसला करें तो अदा-ए-शहादत (हक़ की गवाही) की ज़िम्मेदारियाँ पूरी तरह महसूस कराके उनसे शहादत अदा कराई जाए (यानी कलिम-ए-शहादत पढ़वाया जाए) ।

तीसरे, यह बात हमेशा जमाअत के अरकान के ज़ेहन में बैठाई जाती रहे कि जमाअत में शरीक होते वक़्त उन्होंने अपने ख़ुदा से जो इक़रार किया है, उसे पूरा करना और जो ज़िम्मेदारियाँ क़बूल की हैं, उन्हें अदा करना अब उनका अपना काम है । उन्हें इस बात का मोहताज नहीं होना चाहिए कि कोई दूसरा उन्हें उकसाए तो वे काम करें, बल्कि उन्हें ख़ुद अपने ईमानी जज़्बे से भी अपने मक़सदे ज़िन्दगी के लिए सरगर्म होना चाहिए ।

चौथे, उन्हें जमाअत के अरकान को नमाज़ और क़ुरआन समझकर पढ़ने और हर नमाज़ और क़ुरआन शरीफ़ की तिलावत के वक़्त अपने नफ़्स का मुहासबा (आत्मनिरीक्षण) करने का सुझाव देना चाहिए, क्योंकि इस ज़रिए से नफ़्स का तज़किया (अन्त:करण की शुद्धि) भी होगा और दिलों में वह आग भड़केगी, जो अमल पर उभारनेवाली है ।

पाँचवें, हर मक़ामी अमीर को अपनी जमाअत के अरकान पर गहरी नज़र रखनी चाहिए और उनमें जो ख़ामियाँ महसूस हों, हिक्मत के साथ उनका सुधार करना चाहिए ।

2. चूँकि तबलीग़ व दावत के काम में अरकाने जमाअत की रहनुमाई करना, अरकान की अख़लाक़ी तरबियत करना और जमाअत की तहरीक को ठीक-ठीक सही रास्ते पर आगे बढ़ाना मक़ामी जमाअतों के अमीरों का काम है, और इन अहम ज़िम्मेदारियों को अंजाम देने के लिए ख़ुद

उनकी अपनी तैयारी भी ज़रूरी है । इसलिए तय किया गया है कि मक़ामी जमाअतों के अमीर हर साल कम से कम एक-एक, दो-दो महीने के लिए अमीरे जमाअत के साथ आकर रहें । इस बात को तय करना कि कौन साहब किस महीने में आएँ, हर एक क़ी अपनी मरज़ी पर छोड़ दिया गया है । जिन साहब के लिए जिस महीने में आना मुमकिन हो, वे अमीरे जमाअत को ख़त लिखकर ख़ुद तय कर लें । साथ ही अगर वे अपने हल्क़े से ख़ास-ख़ास अरकान में से कभी किसी को साथ लाना चाहें तो ला सकते हैं ।

3. इस बात की सख़्त ज़रूरत महसूस की गई है कि जमाअत के कुछ बेहतरीन दिलो दिमाग़ के लोग मरकज़ में मुस्तक़िल तौर पर रहें और मरकज़ किसी ऐसी जगह बनाया जाए, जहाँ न सिर्फ़ कारकुनों (कार्यकर्त्ताओं) की तरबियत (प्रशिक्षण) का अच्छा इंतिज़ाम किया जा सकता हो, बल्कि उसके आस-पास के इलाक़े में कुछ नमूने का काम भी किया जाए ताकि दावत व तबलीग़ का अमली तजुर्बा भी कारकुनों को हासिल हो सके । इस सिलसिले में मरकज़ के लिए जगह का इंतिख़ाब और उन लोगों का इंतिख़ाब जिनका मरकज़ में रहना ज़रूरी है, और अन्य अमली तदबीरों को अमीरे जमाअत पर छोड़ दिया गया है ।

4. दावत व तबलीग़ के लिए लिट्रेचर की तैयारी का भार अब तक अमीरे जमाअत पर रहा है । लेकिन अब ज़रूरत महसूस की जा रही है कि जमाअत में जो लोग अहले क़लम (लेखक) हैं, वे इस काम में अपनी सलाहियतों के मुताबिक़ पूरा हिस्सा लें ।

5. जमाअत के दस्तूर पर बाहर से जो एतिराज़ हुए हैं और ख़ुद जमाअत के अरकान ने तजुर्बे और सोच-विचार से जिन सुधारों की ज़रूरत ज़ाहिर की है, उनपर ग़ौर किया गया और इस्लाह के बाद तय किया गया कि नया तर्मीमशुदा (संशोधित) दस्तूर प्रकाशित किया जाए[1]

---

1. इस क़रारदाद के मुताबिक़ नया दस्तूर प्रकाशित हो चुका है ।

जमाअत के अस्थायी मरकज़ की स्थापना

फ़रवरी, 1944 ई० के शूरा के इजतिमा में कई एक मस्लहतें ध्यान में रखते हुए तय किया गया था कि एक मरकज़ी इदारा क़ायम करने के लिए अगर कोई मुस्तक़िल जगह नहीं मिलती तो फ़िलहाल वक़्ती तौर पर ही एक मरकज़ बना लिया जाए ताकि हम अपनी संगठनशक्ति के एक बड़े हिस्से को जमा कर सकें और ज़रूरी कामों की शुरूआत कर दें। इस मक़सद के लिए शुरू में सियालकोट के ज़िले में एक मुनासिब मक़ाम तजवीज़ कर लिया गया था और बाहरी जमाअतों को इसकी इत्तिला भी दे दी गई थी, मगर बाद में कुछ वजहों से इस तजवीज़ को कैंसिल कर देना पड़ा। फिर मजलिसे शूरा के मेम्बरों के मशविरे से पठानकोट के क़रीब गाँव जमालपुर की तरफ़ मुंतक़िल होने का फ़ैसला किया गया, जहाँ चौधरी नियाज़ अली ख़ाँ साहब ने मेहरबानी करने अपने वक़्फ़ की इमारतें हमें कुछ दिनों के लिए देना क़बूल कर लिया। चुनाँचे इस फ़ैसले के मुताबिक़ 15 जून, 1942 ई० को अमीरे जमाअत ने कुछ साथियों के साथ वहाँ जाकर रहना शुरू कर दिया और उस वक़्त से यह जगह जमाअत का मरकज़ क़रार पा गई। यह जगह रेलवे स्टेशन सरना से लगभग दो फ़र्लांग के फ़ासले पर है। फ़िलहाल वक़्ती तौर पर ही मरकज़ बनाया गया है। मुस्तक़िल मरकज़ का इंतिख़ाब इंशाअल्लाह जंग ख़त्म होने के बाद आम इजतिमा में किया जाएगा।

इस नए मरकज़ में काम करने के लिए जो नक़्शा बनाया गया है, उसे हम चार हिस्सों में बाँटते हैं—

1. तालीम व तरबियत (शिक्षा और प्रशिक्षण)
2. इल्मी तहक़ीक़ (बौद्धिक अनुसंधान)
3. दावते आम (जन-साधारण का आह्वान)
4. मआशी तदाबीर (आर्थिक स्रोत)

यहाँ हम इन शीर्षकों के अन्तर्गत इस नक़्शे को तरतीब से बयान करेंगे

ताकि मद्देनज़र काम की हैसियत और उसकी अमली सूरत अच्छी तरह वाज़ेह हो जाए और यह भी मालूम हो जाए कि इस काम को चलाने और आगे बढ़ाने के लिए किस क़िस्म के आदमियों और किन साधनों व संसाधनों की ज़रूरत है ।

'ज़माअत इस्लामी' के तहत जो इकाइयाँ हिन्दुस्तान के अनेक मक़ामात पर क़ायम हैं उनके अमीरों को कभी-कभार अपनी मक़ामी जमाअतों के मेम्बरों की सलाहियतों और अपने जमाअती साधनों का पूरी तरह जायज़ा लेकर मरकज़ को सूचित करते रहना चाहिए कि किस-किस विभाग में काम करने के लिए उनके पास क़बिलियत के आदमी मौजूद हैं और हर इकाई (unit) इन कामों को चलाने के लिए क्या साधन पहुँचा सकती है ।

जहाँ जमाअतें मौजूद नहीं हैं और सिर्फ़ अरकान अलग-अलग हैसियत में मौजूद हैं, वहाँ जमाअत का हर व्यक्ति ख़ुद से इस नक़्शे को सामने रखकर अपना और अपने साधनों का जायज़ा ले और हमें बताए कि वे इस सिलसिले में क्या काम कर सकता है या वे कौन-से साधन जुटा सकता है । साथ ही, जो लोग जमाअत में शरीक नहीं हैं पर इस काम से दिलचस्पी और हमदर्दी रखते हैं, वे भी अगर किसी हैसियत से इसमें हिस्सा लेना चाहें तो हमें सूचित करें कि वे किस क़िस्म का और कितना हिस्सा लेने के लिए तैयार हैं ।

1. तालीम व तरबियत (शिक्षा और प्रशिक्षण)

सबसे पहला काम जो हम यहाँ करना चाहते हैं, एक दर्सगाह (स्कूल) और तरबियतगाह (प्रशिक्षण केन्द्र) की स्थापना है । 'नया निज़ामे तालीम' और 'इस्लामी हुकूमत किस तरह क़ायम होती है' किताबों में इस हक़ीक़त को स्पष्ट रूप से बयान कर दिया गया है कि कोई तहरीक जो इनसानी ज़िंदगी में एक मुकम्मल और विशुद्ध इन्क़िलाब बरपा करना चाहती हो कामयाब नहीं हो सकती जब तक कि वह ख़ुद अपने मिज़ाज और अपने तक़ाज़ों के मुताबिक़ इनसानों को ढालने और बनाने के लिए तालीम व तरबियत का एक निज़ाम क़ायम न कर ले । इसी हक़ीक़त को मद्देनज़र

रखकर कुछ साथियों के मशविरे से जो तालीम के फ़न को इल्मी हैसियत से भी अच्छी तरह जानते हैं और अमली तजुर्बा भी रखते हैं, एक दर्सगाह का ख़ाका भी तैयार किया गया है । बुनियादी उसूल वही हैं जो इन दोनों मज़मूनों में बयान किए जा चुके हैं । अमली तफ़्सीलात (Practical Details) अभी इस क़ाबिल नहीं हैं कि उन्हें पूरे तौर पर इसी मरहले में प्रकाशित कर दिया जाए । तजुर्बे से अभी उनमें बहुत कुछ रद्दो बदल होना है । जब हमारा तजुर्बा कामयाब हो जाएगा और हम ख़ुद उसपर मुतमइन हो जाएँगे तो इंशाअल्लाह अपना तालीमी दस्तूर (शैक्षणिक संविधान) और पाठ्यक्रम (Syllabus) दोनों प्रकाशित कर देंगे, फिर भी उसकी आम रूप-रेखा यहाँ पेश की जा रही है—

तालीमी ज़माने को हमने तीन हिस्सों में बाँटा है—असासी (मौलिक), दरमियानी और आली (उच्च) ।

असासी तालीम में हमारी कोशिश यह होगी कि हर इनसान को मुस्लिम होने की हैसियत से दुनिया का काम चलाने के लिए लाज़िमी तौर पर जिन जानकारियों, और जिन अख़लाक़ी ख़ूबियों, और जिन ज़ेहनी और अमली क्षमताओं की ज़रूरत होती है, वे सब तालीम व तरबियत के ज़रिए से बच्चे की शख़्सियत (व्यक्तित्व) में जमा कर दी जाएँ । हम उसे सिर्फ़ किताब ही नहीं पढ़ाएँगे, बल्कि हमारा उस्ताद अमलन उसे अपनी जानकारियों और अपनी क़ाबिलियतों से ज़िंदगी के अनेक क्षेत्रों में काम लेना सिखाएगा और उसे इस क़ाबिल बनाएगा कि बुनियादी तालीम के मरहले से फ़ारिग़ होकर जब वह निकले तो जीवन के हर क्षेत्र में वह एक उम्दा इबतिदाई कारकुन बन सके । उसके ज़ेहनी और जिस्मानी क़ुव्वतों में से कोई क़ुव्वत ऐसी न हो, जिसका इस्तेमाल उसे न आता हो और ज़िन्दगी की अनेक राहों में से कोई राह ऐसी न हो जिस पर चलने के लिए कम से कम ज़रूरी मालूमात उसके पास न हों । इसके अलावा हम उसे इतनी अरबी भी सिखाएँगे कि वह क़ुरआन का सीधा-सादा मतलब ख़ुद समझ ले । इसके अलावा तालीम व तरबियत दोनों के ज़रिए हम उसे इस्लामी तर्ज़े ज़िन्दगी के ज़रूरी आदाब और तौर-तरीक़े और क़ायदे व क़ानून से भी न सिर्फ़ आगाह करेंगे,

बल्कि अमली तौर पर उनका रसिया बना देंगे । यह तालीम सारे बच्चों के लिए समान होगी, क्योंकि हमारे मद्देनज़र यह है कि इस मेयार की तालीम व तरबियत हर बच्चे को हासिल होनी चाहिए, बग़ैर यह सोचे कि आगे चलकर उसे दुनिया में मज़दूर या किसान की हैसियत से काम करना है, या मंत्री की हैसियत से या प्रोफ़ेसर की हैसियत से ।

दरमियानी तालीम के मरहले में बच्चों का दाख़िला बुनियादी तालीम के नतीजों पर निर्भर करेगा । बुनियादी तालीम के आख़िरी मरहले में पहुँचते-पहुँचते हर बच्चे के बारे में अंदाज़ा कर लिया जाएगा कि वह दुनिया की ज़िन्दगी में इबतिदाई कारकुन (आरंभिक कार्यकर्ता) के मर्तबे से बुलंदतर ख़िदमत अंजाम देने की क़ुव्वत रखता है या नहीं । जिन बच्चों के बारे में टीचरों का अंदाज़ा और आज़माइशी इम्तिहान (टेस्ट) का फ़ैसला यह होगा कि वे ऐसी क़ुव्वत रखते हैं, सिर्फ़ उन्हीं को दूसरे तालीमी मरहले में दाख़िल होने की इजाज़त दी जाएगी—और इस मरहले में हमारे पेशे नज़र यह होगा कि बच्चों को उन कामों के लिए तैयार किया जाए, जिनमें जिस्मानी क़ुव्वतों की बनिस्बत ज़ेहनी क़ुव्वतों से ज़्यादा काम लेना पड़ता है । यहाँ हर बच्चे के लिए इन मज़मूनों का मजमूआ तजवीज़ किया जाएगा, जिनके साथ उसके ज़ेहन को लगाव होगा । ज़िन्दगी के जिस मैदान के लिए उसे तैयार करना होगा उसी से ताल्लुक़ रखनेवाली ऊँची तालीम उसे दी जाएगी मगर इस तरह कि हर दुनियावी इल्म के अन्दर दीनी नुक़्त-ए-नज़र रूह की तरह जारी होगा और हर दीनी इल्म को दुनियावी परिप्रेक्ष्य में बताया जाएगा ।

फिर तालिब इल्म को अपने इल्म से अमलन काम लेने का पूरा अभ्यास भी कराया जाएगा और तरबियत के ज़रिए उसमें एक सच्चे मुसलमान की सीरत भी पैदा की जाएगी ।

सबसे आख़िरी क्लास की तालीम बिलकुल विशिष्ट होगी । इसमें हमारे मद्दे नज़र ऐसे उलेमा और माहिरीन पैदा करना होगा, जो ज़िन्दगी के अनेक विभागों में लीडरशिप व रहनुमाई के अहल हों, जिनमें यह क़ाबिलियत हो कि इस्लाम के उसूल पर एक पूरी संस्कृति-व्यवस्था का निर्माण कर

सकें और एक आधुनिकतम स्टेट के गठन का भार उठा सकें । इसके लिए जिस इल्म, जिस कुव्वते-इजतिहाद (क़ुरआन व सुन्नत की रौशनी में नई पैदा होनेवाली समस्याओं का हल निकालना) और जिस परहेज़गारीवाली सीरत व कैरेक्टर की ज़रूरत है, वह उनमें तालीम व तरबियत के ज़रिए से पैदा की जाएगी और इस क्लास में सिर्फ़ वे छात्र लिए जाएँगे, जिनके बारे में दरमियानी तालीम के नतीजों से यह इतमीनान हो जाएगा कि वे अपनी ज़ेहनी व अख़लाक़ी सलाहियतों के एतबार से उसके योग्य हैं ।

2. इल्मी तहक़ीक़ (बौद्धिक अनुसंधान)

इल्मी तहक़ीक़ का विभाग दरअसल हमारी तहरीक का दिल व दिमाग़ होगा । अब तक इस तहरीक का इल्मी काम अकेले एक ही आदमी करता रहा है, लेकिन ज़ाहिर है कि एक अकेला आदमी एक ऐसी हमागीर (सर्वांगीण) और आलमगीर (विश्वव्यापी) तहरीक के लिए इल्मी व फ़िक्री (वैचारिक) बुनियाद जुटाने की ख़िदमत अंजाम नहीं दे सकता । अगर हमें वाक़ई सांस्कृतिक और नैतिक व्यवस्था में कोई इंक़िलाब बरपा करना है तो हमारे लिए यह बेहद ज़रूरी है कि सिर्फ़ उर्दू भाषा में ही नहीं, बल्कि विभिन्न दूसरी भाषाओं—विशेषकर दो-तीन अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में भी ऐसा लिट्रेचर तैयार करें जो इस्लामी निज़ाम के पूरे स्वरूप से दुनिया को परिचित कराए और उसकी मौजूदा सभ्यता और संस्कृति को जड़ बुनियाद से उखाड़कर दिल और दिमाग़ों में इस्लामी निज़ाम की सच्चाई का यक़ीन और उसके क़ायम होने की ख़्वाहिश पैदा कर दे ।

हमें क़ुरआन, हदीस, फ़िक़्ह और इस्लामी इतिहास के बारे में सारे उलूम नए सिरे से संपादित करने होंगे । इसी तरह जदीद उलूम (आधुनिक ज्ञान-विज्ञान) को भी इस्लामी दृष्टिकोण से नए सिरे से मुरत्तब करना होगा । यह काम किए बग़ैर हम हरगिज़ यह उम्मीद नहीं कर सकते कि किसी निरे जन-आन्दोलन या फ़ौजी तहरीक से सही मानों में कोई इस्लामी इन्क़िलाब दुनिया की मौजूदा सांस्कृतिक या नैतिक व्यवस्था में आ जाएगा ।

इस मक़सद के लिए हमें एक तरफ़ ऐसे चिंतनशील व्यक्तियों की ज़रूरत

है जो इस तहक़ीक़ी काम (शोधकार्य) के योग्य हों और हमारे जमाअती विधान के अन्दर रहकर यह कार्य कर सकें । दूसरी तरफ़ एक उम्दा लाइब्रेरी की ज़रूरत है और इसके साथ ऐसे साधनों की ज़रूरत है जिनसे हम दीन के ख़ादिमों की आजीविका का इंतिज़ाम कर सकें ।

3. दावते आम

इन दोनों तामीरी कामों के साथ हम आम दावत का काम भी पूरी ताक़त के साथ चलाना चाहते हैं । हमारी कोशिश बेकार हो जाएगी अगर साथ-साथ उनकी पुश्त पर एक मज़बूत आम राय भी तैयार न होती रहे । जिस तरह उपरोक्त तामीरी कामों के बग़ैर कोई इस्लामी इंक़िलाब बरपा नहीं हो सकता, उसी तरह यह भी मुमकिन नहीं कि अवाम में इस्लाम की दावत फैलाए बग़ैर ऐसा कोई इंक़िलाब बरपा हो सके । हमें न सिर्फ़ हिन्दुस्तान में, बल्कि हो सके तो दुनिया के कोने-कोने में अपनी आवाज़ पहुँचानी होगी । क्योंकि आज किसी एक देश में कोई इंक़िलाब सही माने में उस वक़्त तक नहीं आ सकता जब तक कि बड़े पैमाने पर या विश्व स्तर पर राय आम उसकी ताईद में तैयार न कर ली जाए ।

अरबों इनसानों को हमारे पैग़ाम से वाक़िफ़ होना चाहिए । करोड़ों इनसानों को कम से कम इस हद तक इससे मुतास्सिर हो जाना चाहिए कि वे इस चीज़ को सही मान लें, जिसके लिए हम उठ रहे हैं । लाखों इनसानों को हमारी पुश्त पर अख़लाक़ी और अमली ताईद के लिए तैयार होना चाहिए और एक बड़ी तादाद ऐसे सरफ़रोशों की तैयार होनी चाहिए जो बहुत ऊँचे अख़लाक़वाले हों और इस बड़े मक़सद के लिए कोई ख़तरा, कोई नुक़्सान, कोई मुसीबत बर्दाशत करने में न झिझकें । इस क़िस्म की दावते आम शुरू करने के लिए कोई ख़तरा, कोई नुक़्सान, कोई मुसीबत बर्दाश्त करने में संकोच न करें ।

इस तरह की दावते आम शुरू करने के लिए आरंभ में ज़रूरी है कि छोटे पैमाने पर एक सीमित हल्क़े में कुछ नमूने का काम किया जाए और दावत देनेवालों की अख़लाक़ी और अमली तरबियत करके इस हल्क़े में

उनसे काम लिया जाए, ताकि आइंदा बड़े पैमाने पर दावत फैलाने की राह खुल जाए । यह अलग बात है कि इस ज़रूरत का एहसास हमें पहले भी था, लेकिन पिछले एक साल के जमाअती काम से जो तजुर्बा हासिल हुआ है, उसकी बुनियाद पर हम किसी देरी के बग़ैर यह विभाग क़ायम कर देना चाहते हैं ।

दावते आम के विभाग में काम करने के लिए तमाम बाहरी जमाअतों को अपने-अपने अरकान का जायज़ा लेकर फ़िलहाल ऐसे एक-एक, दो-दो आदमियों का चुनाव करना चाहिए जो इस काम के लिए सबसे ज़्यादा मुनासिब हों और उनकी सिफ़ात व ख़ुसूसियात से मरकज़ को सूचित करना चाहिए । साथ ही यह भी बताना चाहिए कि वे कितने समय के लिए यहाँ आकर रह सकते हैं, उनकी ज़रूरतें क्या हैं, उनके ऊपर किस क़िस्म की ज़िम्मेदारियों का भार है और यह कि वे ख़ुद या मक़ामी जमाअत के अरकान किस हद तक इनकी ज़रूरतों को पूरा कर सकते हैं ।

इसके अलावा हमें यहाँ कम से कम एक होम्योपैथिक डॉक्टर और एक यूनानी हकीम की ज़रूरत है, जो सिर्फ़ ख़ुदा के भरोसे पर अपने शहरी क्लिनिक को ख़त्म करके इस जंगल में आ बसें । जैसा थोड़ा-बहुत क्लिनिक यहाँ चल सकता हो, उसपर ख़ुशी से संतोष करें । पूरी ख़ुदातरसी और ख़ालिस इनसानी हमदर्दी के साथ आस-पास की आबादी को मेडिकल इमदाद पहुँचाए और अपने अच्छे अख़लाक से लोगों के दिल जीत ले । जमाअत में जो हकीम व डॉक्टर ऐसे मौजूद हों, जो इस क़ुरबानी के लिए अपने आपको तैयार पाते हों, वे हमें अपने इरादे से आगाह करें ।

4. आर्थिक उपाय

ज़ाहिर है कि ऊपर जिन कामों का ज़िक्र किया गया है उन सबके लिए आर्थिक स्रोतों की ज़रूरत है और यहाँ उनका अभाव है । इतने बड़े-बड़े कामों के लिए जिस सामूहिक योगदान की ज़रूरत है, वह न हमें अब तक मिला है, न आइंदा इसकी उम्मीद है । न हम वह उपाय कर सकते हैं जिनसे वह हासिल होता है और न हमें उन लोगों से किसी मदद की

उम्मीद रखने का कोई हक़ है जिनका जीवन-उद्देश्य वह नहीं है जो हमारा है।

कुछ सम्पन्न लोग ऐसे ज़रूर हैं जो हमारी दरख़्वास्त के बग़ैर सिर्फ़ अल्लाह के वास्ते कुछ न कुछ भेजते रहते हैं। मगर यह सहायता अब तक के सामूहिक कार्यों के लिए भी नाकाफ़ी थी और आइंदा जो काम करने हैं, उनके लिए तो अभी सवाल ही नहीं पैदा होता। इस वक़्त तक जो भी काम हुआ है, वह ज़्यादातर जमाअत के बुक डिपो की आमदनी से हुआ है—और वह भी कुछ बहुत ज़्यादा नहीं है कि इसके सहारे काम में इतना विस्तार हो सके।

अब इस महान कार्य के लिए जो स्रोत अपेक्षित हैं, उनकी प्राप्ति दो ही तरह से मुमकिन है। एक यह कि जो लोग जमाअते इस्लामी में शरीक हुए हैं और जो लोग इसके लक्ष्य से हमदर्दी रखते हैं, वे इस राह में आर्थिक क़ुरबानियाँ देने के लिए राज़ी हो जाएँ और उन बातिलपरस्तों (असत्यवादियों) से सबक़ लें जो आज अपने नज़रियों की सत्ता क़ायम करने या क़ायम रखने के लिए करोड़ों पौंड रोज़ाना आग में फूँक रहे हैं। ज़ाहिर है कि बातिलपरस्तों की इन क़ुरबानियों के मुक़ाबले में अगर हक़ पर चलनेवाले कुछ भी क़ुरबानी न करें और अपने ज़ाती फ़ायदों ही की पूजा करते रहें तो फ़ितरत के क़ानून के तहत यह नामुमकिन है कि हमें बातिल (असत्य) के मुक़ाबले में उस हक़ को फैलाने में कामयाबी हासिल हो जाए, जिसपर हम ईमान लाए हैं। दूसरी सूरत यह है कि हमारी जमाअत में जो लोग किसी क़िस्म के उद्योग या तिजारती काम करने की सलाहियत रखते हैं, वे यहाँ आएँ और अपनी क़ाबिलियत से काम लेकर दौलत पैदा करें और एक हिस्सा अपनी निजी ज़रूरतों पर और दूसरा हिस्सा अपने ज़िन्दगी के मक़सद पर लगाएँ।

इसी उद्देश्य के लिए हमने अपने प्रोग्राम में एक मद आर्थिक स्रोतों की भी रखी है। यहाँ ज़मीन काफ़ी मौजूद है और बहुत हरी-भरी और उपजाऊ है। बिजली मौजूद है, बड़ी-बड़ी मंडियाँ क़रीब हैं। यातायात और माल ढुलाई के साधन जंग की मुश्किलों के बावजूद इस वक़्त तक यहाँ उपलब्ध

हो रहे हैं । अनेक कृषि उद्योग और व्यापार सम्बन्धी काम कम या ज़्यादा पूँजी से यहाँ शुरू किए जा सकते हैं । मक़ामी जमाअतों के अमीर अपनी-अपनी जमाअतों का जायज़ा लेकर देखें कि उनके साथियों में से कौन लोग क्या काम करने की सलाहियत रखते हैं और कितने साधन उनके पास हैं । इस सिलसिले में रिपोर्टें मिलने के बाद हम हर एक को उसके हालात के मुताबिक़ मशविरा देंगे और जितनी सहूलतें मरकज़ी इदारे की तरफ़ से पहुँचाई जा सकती हैं, वे पहुँचाई जाएँगी ।

रूदादे इजतिमा

(मजलिसे शूरा, शव्वाल 1361 हिजरी)

प्रस्तुति — मौलाना अबुल आला मौदूदी (अमीरे जमाअत)

शव्वाल 1361 हिजरी (अक्तूबर 1942 ई०) के दूसरे हफ़्ते में मजलिसे शूरा का दूसरा इजतिमा दिल्ली में हुआ। इजतिमा का मक़सद कुछ ऐसे मतभेदों का हल तलाश करना था जो बदक़िस्मती से पहले मरहले ही में उस नाज़ुक मौक़े पर जमाअत के निज़ाम के अन्दर पैदा हो गए थे और जिनकी वजह से यह ख़तरा पैदा हो गया था कि कहीं 'इक़ामते दीन' की यह मुनज़्ज़म कोशिश, जो एक सदी के ठहराव के बाद फिर मुश्किल से शुरू हुई है, शुरू होते ही ख़त्म न हो जाए और ऐसे मायूस कर देनेवाले असरात अपने पीछे न छोड़ जाए कि अल्लाह के दूसरे बन्दों को भी उसकी नाकामी मुद्दतों तक एक मिसाल बनकर दीने हक़ को क़ायम करने की जिद्दोजुहद से रोकती रहे। मैंने उन मतभेदों को सुलझाने की जितनी कोशिशें कीं, उनमें मुझे सख़्त नाकामी हुई है—और सिर्फ़ नाकामी ही नहीं, बल्कि बिखराव, मतभेद, बददिली और बदगुमानियों का ज़हर दूर व नज़दीक के अरकान में आम तौर पर फैलना शुरू हो गया। तब मैंने मजबूर होकर शूरा के मेम्बरों को दिल्ली में जमा होने का कष्ट दिया, ताकि उस उलझन को दूर करने में वे मेरी मदद करें।

निम्न सदस्य बैठक में शरीक थे—

1. मौलाना अबुल हसन अली साहब, लखनऊ
2. जनाब मुहम्मद यूसुफ़ साहब, भोपाल
3. मौलाना सिबग़तुल्लाह साहब, उमराबाद (मद्रास)
4. मौलाना हकीम अब्दुल्लाह साहब, रोड़ी (हिसार)
5. सय्यद अब्दुल अज़ीज़ साहब 'शर्क़ी', जालंधर
6. मलिक नसरुल्लाह ख़ाँ साहब 'अज़ीज़', लाहौर
7. क़ाज़ी हमीदुल्लाह साहब, सियालकोट

8. अब्दुल जब्बार साहब ग़ाज़ी, दिल्ली

9. जनाब मुहम्मद बिन अली अल्वी साहब, काकोरवी

10. मौलाना मुहम्मद मंज़ूर साहब नोमानी, बरेली

11. मौलाना सैयद जाफ़र साहब, कपूरथला

12. क़मरुद्दीन ख़ाँ साहब, पतवाखाली (बंगाल)

13. अताउल्लाह साहब, पतवाखाली

चार-पाँच दिनों तक हम लोग इस काम में लगे रहे । पहले तो मैंने चाहा कि उन असल मामलों पर बहस कराई जाए जिनको लेकर मतभेद है और जो लोग मुझसे या मेरे काम से मुतमइन नहीं हैं, वे ख़ुफ़िया पत्राचार, कानाफूसी, ग़ीबत और चेमेगोई को छोड़कर जमाअत के सामने अपनी बेइतमीनानी के असबाब साफ़-साफ़ बयान कर दें । फिर अगर जमाअत उनके बयान से मुतमइन हो जाए तो मुझे रहनुमाई के मंसब से हटा दिया जाए । लेकिन उन लोगों ने ऐसा नहीं किया । इसके बाद मैंने जमाअत के सामने तीन विकल्प पेश किए—

एक यह कि मैं ख़ुद इस्तीफ़ा देता हूँ, मेरी जगह किसी दूसरे आदमी को रहनुमा चुन लिया जाए ।

दूसरे यह कि एक आदमी नहीं मिलता तो तीन-चार आदमी मिलकर इस काम को सँभालें ।

तीसरे यह कि जमाअत का यह निज़ाम जो हमने बनाया है, उसे तोड़ दिया जाए और उन सब लोगों को जो इस नस्बुलऐन (लक्ष्य) की ख़िदमत का अहद कर चुके हैं, आज़ाद छोड़ दिया जाए कि जिस आदमी का जिसपर इतमीनान हो, उसके साथ लगकर काम करे । और जो लोग किसी दूसरे से मुतमइन न हों, मगर ख़ुद अपने ऊपर इतमीनान रखते हों, वे ख़ुद उठें और काम करें—और जो लोग दूसरों से भी मायूस हों और अपने आप से भी, वे फिर 'इमाम मेहदी के प्रकट होने' का इंतिज़ार करें ।

पहली तजवीज़ इसलिए इत्तिफ़ाक़े राय से रद्द कर दी गई कि जो लोग इस वक़्त जमाअत में शामिल हुए हैं उनमें से कोई भी इस भार को संभाल

नहीं सकता । ख़ुद मतभेद रखनेवाले लोग भी इस बात से सहमत थे ।

दूसरी तजवीज़ भी इत्तिफ़ाक़े राय से रद्द कर दी गई क्योंकि वह शरई तौर पर सही नहीं है और न अमलन हमारे मक़सद के लिए फ़ायदेमंद ।

रही तीसरी तजवीज़, तो इख़तिलाफ़ रखनेवाले लोगों की ख़्वाहिश यह थी कि उसी पर अमल किया जाए और मेरा रुझान ख़ुद भी इसी तरफ़ था, क्योंकि मैं ऐसे अलग-अलग मिज़ाज रखनेवाले तत्त्वों के समूह में कोई भलाई न देखता था जो संगठन-व्यवस्था और सामंजस्य के लिए तैयार न हों और उन कम से कम ज़रूरी सिफ़ात से भी ख़ाली हों, जिनके बग़ैर कोई कार्यशील संगठन खड़ा नहीं हो सकता ।

लेकिन शूरा के मेम्बरों की अक्सरियत ने इस तजवीज़ से सख़्त असहमति ज़ाहिर की । उनका कहना यह था कि इस तरह जमाअत को तोड़कर हम अपने नस्बुलऐन की ख़िदमत करने के बजाए उसके साथ दुश्मनी करेंगे और हमारी यह हरकत उस जड़ता (जुमूद) को बाक़ी रखने के लिए एक और पक्की दलील बन जाएगी जो बालाकोट की ट्रेजडी के बाद से एक सौ दस साल तक इस्लामी तहरीक पर छाई रही । इसलिए बजाए इसके कि कुछ लोगों के मतभेद की वजह से जमाअत टूटे, क्यों न वे लोग जमाअत से टूट जाएँ जो साथ मिलकर नहीं चल सकते । यह दलील इतनी वज़नी थी कि आख़िरकार पूरी बहस पर यह भारी पड़ गई । जो लोग मतभेद से प्रभावित थे उनमें से कुछ ने रुजू कर लिया और सिर्फ़ चार लोग ऐसे रह गए जो मतभेद पर क़ायम रहते हुए जमाअत से अलग हो गए । इनके नाम ये हैं—

1. मौलाना मुहम्मद मंजूर साहब नोमानी, एडीटर 'अल-फ़ुरक़ान', बरेली
2. मौलाना सैयद मुहम्मद जाफ़र साहब, ख़तीब जामा मस्जिद, कपूरथला
3. क़मरुद्दीन ख़ाँ साहब, भूतपूर्व नाज़िमे जमाअत
4. अताउल्लाह साहब, पतवाखाली (बंगाल)

लेकिन इन लोगों के अलग होने के बाद भी मैंने जमाअत के नेतृत्व का भार संभालना उस वक़्त तक जायज़ न समझा था, जब तक कि जमाअती साथियों (रुफ़क़ा) को इख़तिलाफ़ की पूरी हक़ीक़त से आगाह करके यह

न पूछ लेता कि इसके बाद भी वे मुझपर भरोसा रखते हैं या नहीं । चुनांचे मैंने अलग होनेवाले लोगों की वह तहरीर, जिसमें उन्होंने मेरे व्यक्तित्व और मेरे काम पर अपने एतिराज़ बयान किए थे, जमाअत के सामने पेश कर दी—और हर एतिराज़ का जो जवाब मेरे पास था, वह भी बयान कर दिया, फिर रुफ़का (जमाअती भाइयों) से अर्ज़ किया कि दोनों पहलुओं की बेलाग तुलना कर लें और आज़ादी के साथ फ़ैसला करें कि जिस आदमी को उन्होंने एक साल पहले अपना रहनुमा चुना था, वह अब भी उनकी निगाह में इस लायक़ है या नहीं कि वे उसे रहनुमा तसलीम करें । जमाअत की तरफ़ से इस सवाल का जवाब 'हाँ' में था ।

मुझे अफ़सोस है कि यह तहरीर (लेख) जिसका ताल्लुक़ तनहा मेरी ज़ात से नहीं है, बल्कि दरअसल जमाअत और तहरीक से है, मुझे गुप्त रूप में दी गई है । अभी तक उसके लेखक उसे प्राइवेट रखने पर ज़ोर दे रहे हैं । अगर ऐसा न होता तो मैं उसे और अपने जवाब को निस्संकोच प्रकाशित कर देता ।

इसके बाद मजलिसे शूरा ने जमाअत की तंज़ीम (संगठन) और आइंदा के काम के बारे में भी ज़रूरी मामलों पर ग़ौर किया और निम्न मसले तय किए—

1. जमाअत की तंज़ीम के लिए शुरू में पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार और दक्षिण के जो बड़े-बड़े हल्क़े बनाए गए थे और जिन पर मौलाना मुहम्मद मंज़ूर साहब, मौलाना अमीन अहसन इस्लाही साहब, मौलाना सैयद जाफ़र साहब और मौलाना सिबग़तुल्लाह साहब वग़ैरह हज़रात को अमीर नियुक्त किया गया था, हलक़-ए-दकन को छोड़कर बाक़ी उन सबको तोड़ दिया गया आइंदा से इन तमाम हल्क़ों की मक़ामी जमाअतों का ताल्लुक़ सीधे मरकज़ से रहेगा । अलबत्ता सिर्फ़ दक्षिण की जमाअतें मौलाना सिबग़तुल्लाह साहब की निगरानी में काम करती रहेंगी ।

2. जमाअत के निज़ाम में एहतियात की कोशिशों के बावजूद अच्छी-ख़ासी तादाद ऐसे लोगों की दाख़िल हो गई है जिनकी ज़ेहनी, अख़लाक़ी व दीनी हालत इस जमाअत की मेम्बरशिप के लिए किसी तरह मुनासिब नहीं है ।

ऐसे अरकान की सोच व अमल की इस्लाह के लिए एक मुनासिब अवधि (जिसका निर्धारण हर आदमी की हालत के लिहाज़ ही से हो सकता है) निश्चित की जाए और इस दौरान में सुधार की पूरी कोशिश की जाए। और अगर इस्लाह न हो सके तो उनसे दरख़्वास्त की जाए कि उस वक़्त तक जमाअती निज़ाम से बाहर रहें, जब तक वे कम से कम इस मेयार पर न पहुँच जाएँ जो इस जमाअत की रुकनियत (सदस्यता) के लिए वांछित (मतलूब) हैं। साथ ही आइंदा के लिए यह ज़रूरी है कि किसी आदमी को उस वक़्त तक जमाअत में न लिया जाए, जब तक वह जमाअत के मस्लक (विचारधारा) से पूरी तरह वाक़िफ़ न हो जाए और उसकी ज़िन्दगी में अमलन नुमायाँ तबदीली न हो।

3. मरकज़ में निर्माण-कार्य के लिए अमीरे जमाअत ने जो नक़्शा बनाया है उसे मजलिसे शूरा भी पसंद करती है।

हिसाब आमद व ख़र्च जमाअते इस्लामी

(1 सितम्बर, 1941 से 31 दिसम्बर, 1942 तक)

तफ़सील आमदनी

बक़ायाज़ात अगस्त के आख़िर तक	74 रु०	14 आना	
किताबों की बिक्री	7413 रु०	15 आना	9 पाई
सहायता (इआनत अह्ले ख़ैर)	5943 रु०	13 आना	9 पाई
ज़कात व सदक़ात	616 रु०	10 आना	3 पाई
क़र्ज़	2141 रु०		
वुसूली क़र्ज़	150 रु०	2 आना	6 पाई
विविध स्रोत	664 रु०	13 आना	3 पाई
कुल आमदनी	17005 रु०	5 आना	6 पाई
कुल ख़र्च	13963 रु०	11 आना	
बक़ाया	3041 रु०	10 आना	6 पाई

1 दिसम्बर सन् 1942 के आख़िर तक

तफ़सील ख़र्च

मुलाज़मीन की तन्ख़्वाह	674 रु०		
इश्तेहार (विज्ञापन)	25 रु०	8 आना	
स्टेशनरी	98 रु०	4 आना	6 पाई
सफ़र ख़र्च	286 रु०	2 आना	
मेहमानख़ाना	465 रु०	13 आना	
किताबों की छपाई[2]	5365 रु०	15 आना	3 पाई
प्रेस[3]	3137 रु०	1 आना	3 पाई
क़र्ज़ जो इदारे के कुछ स्टाफ़ को दिया गया	259 रु०	2 आना	6 पाई
अदायगी क़र्ज़[4]	1443 रु०		
अरबी अनुवाद	20 रु०		
ज़रूरतमंदों की इमदाद	150 रु०	4 आना	
डाक ख़र्च	589 रु०	10 आना	6 पाई
एजेंसी की किताबें	1195 रु०		
अन्य ख़र्च	253 रु०	13 आना	6 पाई
योग	13963 रु०	11 आना	

1. इसके अलावा जमाअत से बुक डिपो में साल के ख़त्म होने पर तक़रीबन छह हज़ार रुपये की किताबें मौजूद थीं और अनेक बुक सेलरों, बाहरी जमाअतों और लोगों को बुक डिपो के 1722 रुपये, 1 आना, 6 पाई देने थे ।

2. साल के ख़त्म होने पर हिसाबात की जाँच से 57 रुपये, 2 आना कागज़ के हिसाब में ज़्यादा निकले और उन्हें विविध आमदनी में शामिल कर दिया गया । इसी तरह किताबों की छपाई का वाक़ई ख़र्च 5308 रुपये, 13 आना, 3 पाई हैं ।

3. प्रेस की ख़रीदारी, ट्रांसपोर्ट और ज़रूरतों को पूरा करने के लिए

जो रक़में अलल-हिसाब (पेशगी) दी गई थीं, उनमें से 450 रुपये बाद में वापस हो गए और विविध आमदनी में शामिल कर दिए गए । इस तरह प्रेस का असल ख़र्च 2687 रुपये, 1 आना, 3 पाई हैं ।

4. नक़द अदायगी के अलावा एक साहब के क़र्ज़ में 12 रुपये किताबों की सूरत में अदा किए गए हैं । इस तरह जमाअत के ज़िम्मे वाक़ई क़र्ज़ 686 रुपये है ।

5. साल के आख़िर में मौलाना अबुल हसन अली साहब की देखरेख में जमाअत के लिट्रेचर को अरबी भाषा में रूपांतरित करने का काम शुरू कर दिया गया है, सब तर्जुमे बिना मुआवज़ा (पारिश्रमिक) के किए जा रहे हैं । यह रक़म रूपांतरित सामग्री को फ़ेयर कराने और अरब देशों की पत्र-पत्रिकाओं से पत्र-व्यवहार पर ख़र्च हुई है ।

काम की प्रगति

प्रस्तुति :— मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी (अमीरे जमाअत)

जमाअत इस्लामी की रफ़्तार मालूम करने के लिए अरकान की ओर से अक्सर बेचैनी ज़ाहिर की जा रही है—और यह बेचैनी एक हद तक स्वाभाविक है । मैं अब तक इस अंदेशे से इसे नज़रअंदाज़ करता रहा हूँ कि कहीं हमारे काम में भी नुमाइश और पब्लिसिटी की भावना न आ जाए और अल्लाह के लिए काम करने के बजाए हम दुनिया को दिखाने के लिए काम न करने लगें । पर आज महज़ इस ख़याल से इसका ज़िक्र करता हूँ कि जो रुफ़क़ा (अरकाने जमाअत) मरकज़ से दूर बैठे हैं और जिन्हें मालूम नहीं है कि काम किस रफ़्तार से हो रहा है, कहीं उनपर मायूसी न छाने लगे ।

जमाअत के अरकान की तादाद इस वक़्त सात सौ के क़रीब है । दूर की जमाअतों की तरफ़ से अब तक पूरी फ़ेहरिस्तें नहीं आई हैं, इसलिए सही तादाद निर्धारित नहीं हो सकती । मुमकिन है कि असल तादाद इस अन्दाज़े से ज़्यादा ही हो ।

सिन्ध, बलूचिस्तान, सरहद, बंगाल, बम्बई और मध्य भारत के इलाक़े

अभी तक हमारी दावत से बहुत बेगाना हैं। ज़्यादातर जिन इलाक़ों ने इसका असर क़बूल किया है, वे पंजाब, उत्तर-प्रदेश, बिहार, दकन और मद्रास के इलाक़े हैं।

जहाँ तक लिट्रेचर की छपाई और अरकाने जमाअत के काम की रिपोर्टों से अंदाज़ा कर सका हूँ, पिछले डेढ़ दो साल में हम तक़रीबन एक लाख आदमियों तक अपनी आवाज़ पहुँचा चुके हैं और उनमें से कम से कम दस प्रतिशत हिस्सा हमारी दावत से मुतास्सिर हो चुका है।

ग़ैर मुस्लिमों में अभी जमाअत की दावत देने का काम बिलकुल नहीं हुआ। लेकिन जो थोड़ी-सी कोशिश इस सिलसिले में की गई है, उसके नतीजे मायूस करनेवाले नहीं हैं। इससे इतना अंदाज़ा तो ज़रूर हो गया कि ग़ैरमुस्लिम क़ौमों में मुसलमानों के ख़िलाफ़ जो ऐतिहासिक और क़ौमी पक्षपात पाए जाते हैं, इंशाअल्लाह हमारी इस दावत की राह में कोई बड़ी रुकावट न बन सकेंगे।

अवाम, देहातियों और मेहनतपेशा तबक़ों में भी अभी तक किसी बड़े पैमाने पर काम शुरू नहीं हो सका है। इस सिलसिले में अभी मैं ख़ुद भी इबतिदाई तजुर्बा कर रहा हूँ और कुछ दूसरे सहयोगी भी अपने स्थान पर अनेक तरीक़ों से काम कर रहे हैं। इंशाअल्लाह कुछ ज़्यादा मुद्दत न गुज़रेगी कि इन तजुर्बों से हम अवाम में तबलीग़ करने का एक नया मुनासिबतरीन ढंग मालूम करने में कामयाब हो जाएँगे।

जमाअत की दावत के लिए अब तक हम ज़्यादातर उर्दू ज़बान ही को साधन बनाते रहे हैं और दूसरी ज़बानों से कुछ ज़्यादा काम नहीं ले सके हैं। लेकिन अंग्रेज़ी, तुर्की, हिन्दी, तमिल, तेलुगू और मलयालम में लिट्रेचर की तैयारी के लिए अमली कोशिश शुरू हो चुकी है— और अगर अल्लाह का फ़ज़्ल शामिले हाल रहा तो जंग (द्वितीय विश्व युद्ध) के बाद हम हिन्दुस्तान और दूसरे मुल्कों में इन ज़बानों के माध्यम से विचारों का प्रसार शुरू कर देंगे।

सबसे बड़ी चीज़ जो हमारे नज़दीक हर दूसरे नतीजे से ज़्यादा क़ीमती है, वह यह है कि इस दावत का असर जहाँ जहाँ भी पहुँचा है, उसने

मुर्दा ज़मीरों (अन्तरात्माओं) को ज़िंदा और सोते हुए ज़मीरों को बेदार क
दिया है । इसका सबसे पहला असर यह हुआ कि लोग अपना आत्मनिरीक्ष
स्वयं करने लगे हैं । हलाल-हराम, पाक-नापाक हक़-नाहक़ की तमी
पहले की महदूद और सीमित मज़हबियत की तुलना में अब ज़्यादा व्याप
पैमाने पर ज़िन्दगी के तमाम मामलों में शुरू हो गई है । पहले जो कु
दीनदारी के बावजूद कर डाला जाता था, वह अब बर्दाश्त नहीं होत
बल्कि उसकी याद भी शर्मिंदा करने लगी है । पहले जिन लोगों के लि
किसी मामले का यह पहलू सबसे कम क़ाबिले तवज्जोह था कि यह ख़ु
की निगाह में कैसा है, उनके लिए अब यही सवाल सबसे ज़्यादा अह
हो गया है । पहले जो धार्मिक भावना इतनी क्षीण हो चुकी थी कि बड़ी-ब
चीज़ें भी न खटकती थीं, अब वह इतनी तेज़ हो गई है कि छोटी-छो
चीज़ें भी खटकने लगी हैं । ख़ुदा के सामने ज़िम्मेदारी व जवाबदेही क
अक़ीदा अब एहसास बनता जा रहा है और बहुत-सी ज़िन्दगियों में इ
एहसास से नुमायाँ तबदीली हो रही है । लोग अब इस दृष्टिकोण से सोच
लगे हैं कि दुनिया की ज़िन्दगी में जो कुछ जिद्दोजुहद वे कर रहे हैं, व
ख़ुदा की निगाह में किसी क़द्र व क़ीमत की हामिल हो सकती है या मह
धूल धूसरित हो जानेवाली है ।

फिर बिहम्दिल्लाह, इस दावत ने जहाँ भी असर दिखाया है, बेमक़स
ज़िन्दगियों को बामक़सद बनाया है और सिर्फ़ उनके मक़सदे ज़िन्दगी
नहीं, बल्कि मक़सद तक पहुँचने की राह को भी उनकी निगाहों के सा
बिलकुल स्पष्ट कर दिया है । ख़यालात का बिखराव दूर हो रहा है, फ़ुज़
और निरर्थक दिलचस्पियों से दिल ख़ुद हट रहे हैं । ज़िन्दगी के हक़ी
और अहमतर मसायल तवज्जोह का केन्द्र बन रहे हैं । फ़िक्रो नज़र ए
मुनज़्ज़म सूरत इख़तियार कर रही है और एक सीधी राह पर हरकत क
लगी है । मतलब यह कि कुल मिलाकर बुनियादी ख़ुसूसियात अच्छी-ख़ा
क़ाबिले इतमीनान रफ़्तार के साथ परवान चढ़ रही है, जो इस्लाम के सब
ऊँचे लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए पहली फ़ुर्सत में लाज़िमी तौर पर हो
ज़रूरी है ।

इसमें शक नहीं कि जो कुछ होना चाहिए था, उसके लिहाज़ से

कुछ हुआ, वह बहुत कम है । लेकिन इस कमी का एहसास अगर किसी आदमी को मायूस होकर बैठ जाने पर आमादा करता है तो उसे सचेत हो जाना चाहिए कि इस क़िस्म के एहसास हमेशा शैतानी उकसाहट का नतीजा होते हैं और अगर यह एहसास उसे खोए हुए को पाने के लिए जिद्दोजुहद पर उभारता है तो उसे अल्लाह का शुक्र अदा करना चाहिए और जो कुछ कमी वह महसूस करता है, उसे पूरा करने के लिए मुस्तैदी के साथ काम करना चाहिए । जहाँ तक यह कमी हमारी कोताहियों के सबब से है, इसपर हम अल्लाह से माफ़ी चाहते हैं और आइंदा ज़्यादा ख़िदमत की तौफ़ीक़ माँगते हैं । पर यह हक़ीक़त है कि हमारी कोताहियाँ ही इस कमी का एक मात्र कारण नहीं हैं, बल्कि इसके कुछ और कारण भी हैं, जिनसे बचना हमारे बस में नहीं ।

सबसे पहला और अहम कारण जो हमारे रास्ते में ग़ैरमामूली रुकावट पैदा कर रहा है, मौजूदा जंग है । हमारे रुफ़क़ा (सहयोगी) अक्सर काम की सुस्त रफ़्तारी देखकर नाउम्मीदी के शिकार हो जाते हैं । उन्हें याद नहीं रहता कि हमने काम की शुरूआत ही जंग के ज़माने में की है—और शुरू से लेकर अब तक जंगी हालात की पकड़ सख़्त से सख़्त ही होती चली जा रही है । अव्वल तो एक सांस्कृतिक व राजनीतिक व्यवस्था जो हर ओर से पूरी तरह छाई हुई और मुसल्लत हो, अपने दायरे में वैसे ही किसी विरोधी दावे के लिए उठने और फैलने की गुंजाइश बहुत कम छोड़ती है । मगर विशेष रूप से जब वह एक बाहरी ताक़त से ही मौत व ज़िन्दगी की कशमकश में मुब्तला हो, उसकी हदों में रहकर इस क़िस्म की एक दावत शुरू करना जैसी कि हम कर रहे हैं और भी ज़्यादा मुश्किल है ।

मौजूदा ग़ालिब निज़ाम इस वक़्त ज़मीन और उसके तमाम संसाधनों पर सख़्ती के साथ क़ाबिज़ है और अपने वुजूद को बाक़ी रखने के लिए समस्त साधनों को इस तरह इस्तेमाल कर रहा है कि दूसरों के लिए जीवन की मामूली आवश्यकताएँ तक नहीं छोड़ना चाहता । इन हालात में उन तहरीकों के लिए भी जीना मुश्किल हो रहा है जो सालों से चल रही थीं और गहरी बुनियादों पर क़ायम हो चुकी थीं । फिर किस तरह उम्मीद की जा सकती है कि एक ऐसी तहरीक जो इस व्यवस्था के बिलकुल विपरीत

है और जिसने ठीक जंग में जन्म लिया है, आसानी के साथ जड़ पक
सकेगी और तेज़ रफ़्तारी के साथ चल सकेगी ।

दूसरी बड़ी रुकावट हमारी राह में साधनों की कमी है । जमाअत ‹
स्थापना के वक़्त हमारे पास सिर्फ़ 74 रुपये की पूँजी थी और दो हज़
रुपये की किताबें हमारे बुक डिपो में मौजूद थीं । इतने कम साधनों
हमने इस अज़ीमुश्शान काम की शुरूआत की थी, जिसका मक़सद
निज़ामे ज़िन्दगी को बदल डालना था । जमाअत में जो लोग दाख़िल हु
वे ज़्यादातर ग़रीब थे और अब तक ख़ुशहाल वर्ग हमारे अन्दर एक प्रतिश
से ज़्यादा नहीं है । इसलिए अरकाने जमाअत की तरफ़ से इस काम
कोई क़ाबिले ज़िक्र आर्थिक सहयोग हमें हासिल नहीं हो सका । अ
अहलेख़ैर से मदद लेने में जिन उसूलों की हम पाबंदी करते हैं वे भी ि
नहीं हैं कि हम उनसे बड़े पैमाने पर कोई मुस्तक़िल आर्थिक सहायता हासि
करने की उम्मीद कर सकें । सिर्फ़ एक मुस्तक़िल ज़रिया हमारे पास जमाअ
का बुक डिपो है, जिसके बलबूते पर हम इतमीनान के साथ काम ‹
सकते है । चुनांचे अब तक मैंने ज़्यादातर तवज्जोह इसी स्रोत की तरफ़
पर दी है और दूसरे काम शुरू करने से जान-बूझकर बचा हूँ, ताकि व
क़दम आगे बढ़ने के बाद पीछे न पड़ने पाए । अगर जंगी हालात ज़्य
शिद्दत न इख़्तियार कर गए होते तो बुक डिपो इस वक़्त इस हद त
तरक़्क़ी कर चुका होता कि उसकी मदद से हम दूसरी तजवीज़ों पर अम
शुरू कर देते, लेकिन मौजूदा हालात ने हमें मजबूर कर दिया है कि अ
तमाम स्रोत और अपनी सारी शक्ति बुक डिपो को चालू रखने में ल
दें ।

तीसरी बड़ी रुकावट काम करने के योग्य आदमियों की कमी है ।
ज़ाहिर है कि एक व्यक्ति तनहा अपने आप में पूरी संस्था नहीं हो सकत
बड़े-बड़े सामूहिक कार्य सिर्फ़ इसी तरह हो सकते हैं कि क़ियादत ‹
रहनुमाई का काम जिस शख़्स के सुपुर्द हो, उसके साथ सहयोग करने
लिए अच्छी सलाहियतें रखनेवाले कुछ आदमी मौजूद हों, जो एक-ए
विभाग का काम पूरी ज़िम्मेदारी के साथ संभाल सकें । इस क़िस्म के आ
मुझे अभी तक नहीं मिले हैं ।

सात सौ आदमियों की यह जमाअत जो पिछले डेढ़-पौने दो साल की
व्रत व तबलीग़ के नतीजे में बनी है, यह अभी बिलकुल इबतिदाई हालत
है। यह महज़ कच्चा माल है जो आइंदा की तामीर के लिए जमा
ाया गया है। विभिन्न तत्त्वों के इस संग्रह ने अभी कोई कार्यगत स्वरूप
ीं अपनाया है। अभी इन तत्त्वों को जाँचने, छाँटने, उनकी क्षमताओं
: जायज़ा लेने और हर सलाहियत के तत्त्व को उसकी मुनासिब जगह
रखने का काम बाक़ी है। यह काम ज़्यादा आसान होता अगर जंग
पैदा होनेवाली मुश्किलें रुकावट न बनतीं और बार-बार अरकाने जमाअत
इजतिमाआत किए जा सकते या कम से कम चार-पाँच आदमी मुझे
ो मिल गए होते जिनपर मरकज़ के कामों का बोझ डालकर मैं ख़ुद पै
पै दौरे कर सकता। मगर जो हालात इस वक़्त सामने हैं, उनमें न
इजतिमाआत ही हो सकते हैं और न मैं ख़ुद जगह-जगह पहुँचकर अरकाने
ााअत से व्यक्तिगत रूप से सम्पर्क स्थापित कर सकता हूँ। इसलिए
ब तक मैं पूरी तरह जमाअत का जायज़ा लेकर यह मालूम नहीं कर
का हूँ कि हमारे रफ़ीक़ों (सहयोगियों) में किन-किन सलाहियतों के लोग
जूद हैं और उनसे क्या काम लिए जा सकते हैं। जिन रुफ़क़ा की सलाहियतों
ा मुझे इल्म हो चुका है, उनसे काम लेने में भी बहुत-से पहलुओं से
कावट है। उनमें कोई ऐसा नहीं है जो रोज़ी-रोज़गार की समस्या से बेफ़िक्र
। उनका पूरा वक़्त अगर जमाअत की ख़िदमत के लिए हासिल किया
ए तो उनकी आर्थिक ज़रूरतों का इंतिज़ाम जमाअत को करना चाहिए।
ार जमाअत के साधन इस भार को सहन नहीं कर सकते। उनको मरकज़
बुलाकर यह चाहूँ कि अपनी जीविका वे ख़ुद पैदा करें और जमाअत
ा काम भी साथ-साथ करें तो यह भी मुमकिन नहीं है। क्योंकि मौजूदा
आशी निज़ाम (अर्थ व्यवस्था) इतना नालायक़ है कि यह किसी को दो
क़्त की रोटी नहीं देता, जब तक कि उसका सारा वक़्त और उसकी सारी
क्ति निचोड़ न ले।

इन रुकावटों के अलावा एक और चीज़ भी है, जिसकी वजह से अब
क न तो काम की रफ़्तार ही तेज़ हो सकी है और न इतना बेहतर काम
सका है, जैसा होना चाहिए था। वह यह है कि हमारे अरकान की

तरबियत बिलकुल इब्तिदाई हालत में है । बहुत कम अरकान ऐसे हैं, जिन्होंने इस जमाअत के मिज़ाज उसके मक़सद और तरीक़ेकार (कार्य-पद्धति) को अच्छी तरह समझा हो—और जो यह जानते हों कि उन्हें क्या करना है और किस तरह करना है । ज़्यादातर लोग जो हमारे हल्क़े में दाख़िल हुए हैं, बहुत ज़्यादा तरबियत के मोहताज हैं । उनमें से बहुत-से लोग ऐसे हैं जो महज़ वक़्ती और आंशिक आकर्षण के नाते जमाअत के अन्दर दाख़िल हो गए हैं, मगर उनकी ज़ेहनियत, सीरत व अख़लाक़ और दैनिक जीवन में कोई नुमायाँ तबदीली नहीं हुई है । बहुत-से ऐसे हैं जो कार्य और संगठन की वही धारणाएँ अभी तक अपने ज़ेहन में लिए हुए हैं जो पहले की जमाअतों को देखकर या उनके अन्दर काम करके उन्होंने ग्रहण किए थे । वे बार-बार उसी क़िस्म के कार्य और उसी तर्ज़ की 'तंज़ीम' (संगठन) की माँग करते हैं और उनके ज़ेहन अभी तक इस हक़ीक़त को नहीं समझ सके हैं कि कृत्रिम संगठन और प्रदर्शन के कार्य के सिवा संगठन और कार्य के कुछ दूसरे सुदृढ़ स्वरूप भी हैं—और इस्लामी तहरीक के स्वभाव से वही ज़्यादा मेल ख़ाते हैं ।

कुछ और लोग हैं जिन्होंने उसूली हैसियत से तो तमाम बातें अच्छी तरह समझ ली हैं, मगर अभी तक काम करने का अमली तरीक़ा उनकी समझ में पूरी तरह नहीं आया है । उनकी हालत उस छात्र की सी है जिसने सिर्फ़ किताब से मेकानिक्स (Mechanics) का ज्ञान प्राप्त किया हो पर जब मशीन से वास्ता पेश आए तो वह अपने को बिलकुल नौसिखिया महसूस करे ।

जमाअत की अक्सरियत इन विभिन्न परिस्थितियों की शिकार है, रहे वे थोड़ी तादाद में अरकान जो जमाअत का ख़ास हिस्सा हैं तो उनको भी अभी कुछ विकास-क्रम से गुज़रना है । वे ख़ुद समझते हैं कि उन्हें क्या करना है और किस तरह करना है और मुमकिन हद तक काम भी कर रहे हैं । लेकिन उन्हें अपनी क़ुव्वतों और क़ाबिलियतों को, जिनका विकास अब तक किसी और ढंग पर होता रहा है और जिनको किसी और तर्ज़ पर अब तक इस्तेमाल किया जाता रहा है, 'ओवरहाल' करके नए सिरे से क्रमबद्ध करना पड़ रहा है और इस नयी तरतीब में बहरहाल

भी काफ़ी वक़्त लगेगा । उनमें जो तक़रीर करनेवाले (मुक़र्रिर) थे और च्छे मुक़र्रिर थे, इस जमाअत के अन्दर आने के बाद वे यकायक गूँगे गए हैं । क्योंकि उनकी ज़बान अब तक जिस राह पर चलती रही थी, राह उससे बहुत भिन्न है— और इस राह में बोलने के लिए उन्हें ज़ान को बिलकुल नए सिरे से तैयार करना है । यही हाल साहित्यकारों, खकों, शिक्षकों, पब्लिक कारकुनों और दूसरी क़ाबिलियतों के रफ़ीक़ों है कि हरेक इस जमाअत में आने के बाद अपनी शख़्सियत को तबदील रने में लगा हुआ है और यह तबदीली जब तक मुकम्मल न हो जाए लोग जमाअती अमल में अपना पूरा हिस्सा अदा करने में असमर्थ हैं ।

इन कारणों पर विचार करने से काम की रफ़्तार सुस्त और ग़ैर महसूस ने की वजहें अच्छी तरह समझ में आ सकती हैं । जो महान लक्ष्य हमारे मने है और जिन ज़बरदस्त ताक़तों के मुक़ाबले में हमें अक्सर इस मक़सद लिए काम करना है, उसका सबसे अहम तक़ाज़ा यह है कि हम में ब्र, विवेकशीलता और मामलाफ़हमी हो और इतना मज़बूत इरादा मौजूद जिससे हम दूरगामी नतीजों के लिए लगातार अनथक संघर्ष कर सकें । ब्री के साथ जल्दी-जल्दी नतीजे बरामद करने के लिए बहुत-से ऐसे तही (निम्न स्तर के) काम किए जा सकते हैं जिनसे एक वक़्ती हलचल पा हो जाए, लेकिन इसका कोई हासिल इसके सिवा नहीं है कि कुछ नों तक फ़ज़ा में शोर रहे और फिर एक सदमे के साथ सारा काम इस ह बर्बाद हो कि मुद्दतों तक दुबारा इसका नाम लेने की भी कोई हिम्मत कर सके ।

(तर्जुमानुल क़ुरआन, रबीउल अव्वल, 1362 हि०/1943 ई०)

रूदादे इजतिमा दरभंगा

प्रस्तुति :— सय्यद अब्दुल अज़ीज़ साहब शर्क़ी

एलान के मुताबिक़ 21-22 अक्टूबर, 1943 ई० को पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के अरकाने जमाअत का इजतिमा दरभंगा में आयोजित हुआ, जिसमें निम्न अरकान शरीक हुए—

1. मौलाना सैयद अबुल आला मौदूदी (अमीरे जमाअत), मरकज़ जमाअत
2. सैयद अब्दुल अज़ीज़ शर्क़ी, मरकज़
3. जनाब नसरुल्लाह ख़ाँ साहब 'अज़ीज़', (एडीटर मुसलमान), लाहौर
4. डॉ० नज़ीर अली साहब ज़ैदी, इलाहाबाद
5. मुहम्मद इसहाक़ साहब, इलाहाबाद
6. अब्दुर्रशीद साहब, इलाहाबाद
7. मौलाना अमीन अहसन साहब, सरायमीर
8. मौलाना सदरुद्दीन इस्लाही साहब, सरायमीर
9. मौलाना मसऊद आलम नदवी साहब, पटना
10. तक़ीउद्दीन साहब नोमानी, पटना
11. हाफ़िज़ मुहम्मद उसमान साहब, पटना
12. डॉ० नूरुलऐन साहब, पटना
13. डॉ० ग़यासुद्दीन साहब, पटना
14. फ़ज़लुर्रहमान साहब, (पूर्व वकील), मुंगेर
15. सैयद हसनैन साहब 'जामिई', दरभंगा

अरकान के अलावा आठ-दस जमाअत के हमदर्द भी विभिन्न स्थानों से आ गए थे ।

इजतिमा के लिए दरभंगा की आबादी से डेढ़-दो मील दूर हरे-भरे खेतों

के दर्मियान एक अलग-थलग स्थान चुना गया था, ताकि सुकून के साथ काम किया जा सके। 21 अक्टूबर की सुबह को पहली मीटिंग हुई। क़ुरआन मजीद की तिलावत के बाद सबसे पहले अरकाने जमाअत का एक-दूसरे से तफ़्सीली तआरुफ़ (परिचय) हुआ। इसके बाद मौलाना मौदूदी साहब ने एक उद्घाटन भाषण (इफ़्तिताही तक़रीर) दिया और निम्नलिखित बातों पर रौशनी डाली—

1. तहरीक इस वक़्त किस मरहले में है ?
2. किस क़िस्म की कठिनाइयों का सामना है ?
3. आर्थिक स्थिति कैसी है ?
4. काम को किस नक़शे पर बढ़ाना मद्देनज़र है ?
5. हमारी तहरीक और दूसरी तहरीकों की नौइयत (प्रकृति) में फ़र्क़ क्या है ?
6. किस-किस क़िस्म के काम असल इंक़िलाबी क़दम उठाने से पहले करने ज़रूरी हैं ?
7. कुछ अरकाने जमाअत में जो ढीलापन पाया जाता है, उसके असल कारण क्या हैं ?
8. किन ग़लतफ़हमियों की वजह से सीमित प्रोग्रामों की माँग की जा रही है ?

पूरी तक़रीर को शब्दशः यहाँ नक़्ल करना तो मुश्किल है, अलबत्ता जमाअत की रहनुमाई के लिए तक़रीर के ज़रूरी हिस्से यहाँ पेश किए जाते हैं—

"हमारी तहरीक इस वक़्त कुछ प्रगति की मंज़िलों को पार करती हुई इस मरहले पर पहुँच गई है कि जहाँ तक हमारे नस्बुलऐन का ताल्लुक़ है, भारतीय मुसलमानों की अनेक जमाअतें इससे मुतास्सिर हो चुकी हैं और वह बात जिसे तीन-चार साल पहले हमारी मज़हबी, सियासी जमाअतें ज़बान पर लाने को तैयार नहीं थीं, अब उसे अधिकतर जमाअतें अपना नस्बुलऐन क़रार देने लगी हैं। लेकिन यह चीज़ हमारे लिए चाहे कितनी ही ख़ुशी का कारण हो, हमें इसपर मुतमइन नहीं होना चाहिए, क्योंकि जहाँ तक मुस्लिम जमाअतों का ताल्लुक़ है, वे जिस आसानी से इस नस्बुलऐन

को क़बूल कर लेती हैं, उस आसानी से इस नस्बुलऐन के मख़्सूस तरीक़ेकार, ज़िम्मेदारियों और अख़लाक़ी तक़ाज़ों को क़बूल नहीं कर सकतीं । इस वक़्त यह ख़तरा सामने है कि कहीं यह नस्बुलऐन हंगामापसंद जमाअतों के हाथों में खिलौना बनकर न रह जाए और वे इसको ज़िंदगी के एक संजीदा मक़सद की हैसियत से दुनिया के सामने पेश करने के बजाए एक हास्यास्पद चीज़ न बना दें । लिहाज़ा अब ज़ोर इस पहलू पर देने की ज़रूरत है कि इस नस्बुलऐन के लिए जिद्दोजुहद करना तो दरकिनार, इसका नाम ज़बान पर लाने के लिए भी ऊँचा कैरेक्टर ज़रूरी है । इस पहलू से विचारधारा के प्रसार की मुहिम इस ज़ोर से शुरू हो जानी चाहिए कि हुकूमते इलाहिया (अल्लाह की हुकूमत) का नारा बुलंद करनेवाली जमाअतें पूरी ईमानदारी से अख़लाक़ी ज़िम्मेदारियों को क़बूल करने पर मजबूर हों और इस नारे के मुताबिक़ काम करें या अगर उन्हें किसी दूसरे रास्ते ही पर चलना हो तो पब्लिक को फ़रेब देने से बाज़ आ जाएँ ।

ख़तरे का दूसरा पहलू यह है कि पिछले पच्चीस-तीस साल से मुसलमानों की सियासी तरबियत ग़लत तर्ज़ पर होती रही है । उनका मुस्तक़िल सामूहिक स्वभाव यह बन गया है कि एक परिकल्पना पर ठोस काम करने के बजाए किसी कार्य योजना (Plan) को मुरत्तब किए बग़ैर शोर मचा देते हैं । यह ग़लत तर्ज़े तहरीक जो जड़ता (जुमूद) से कुछ कम नुक़्सानदेह नहीं है, बहुत लोकप्रिय है, लेकिन हम उसे ख़त्म कर देना चाहते हैं । हमें तहरीक (आन्दोलन) की पूरी कार्ययोजना मुरत्तब करने (Planning) से पहले दावत को हंगामापसंद अवाम तक पहुँचाने से बचना है । ख़ूब सोच लीजिए कि जिस मैदाने जंग में आप उतर रहे हैं उसमें दुश्मन के मोर्चे किधर-किधर और किस तरतीब से फैले हुए हैं और उसके मुक़ाबले में आपको किस तर्ज़ पर मोर्चाबन्दी करनी है, आपके कमज़ोर पहलू कौन-कौन से हैं, आपकी जमाअत को किस-किस पहलू से मज़बूत होना चाहिए । पेशक़दमी किधर से हो और किस रफ़्तार से हो । ग़रज़, यह काम हुल्लड़ मचाने से नहीं होगा । इसके लिए तो एक होशियार जनरल की दूरदर्शिता, व्यापक दृष्टि और इसके साथ अनुशासन में जकड़ी हुई सेना की जिद्दोजुहद अपेक्षित है ।

मौजूदा मरहले की नज़ाकत कुछ इस वजह से भी बढ़ जाती है कि

जहाँ तक मौलिक विचारधारा (बुनियादी अफ़्कार) का ताल्लुक़ है, उनको फैलाने में तो हम बड़ी हद तक कामयाब हो चुके हैं । लेकिन हमारे पास ऐसी सीरत और ऐसी आला क़ाबिलियत रखनेवाला एक मुनज़्ज़म गिरोह जुटाया नहीं जा सका है, जो दुनिया के सामने उसकी अमली तफ़्सीलात को पेश कर सके, जिनकी माँग हमारी उन सोचों पर संजीदगी के साथ ग़ौर करनेवाले लोगों में फ़ौरन पैदा हो जाती है । जब लोग हमसे इजतिमाई ज़िन्दगी का वह तफ़्सीली नक़्शा माँगने लगते हैं जो हमारे निज़ामे फ़िक्र की बुनियाद पर बनना चाहिए तो हम उसे पेश करने में असमर्थ रहते हैं । महज़ इसलिए कि इन तफ़्सीलात को मुरत्तब करना एक अकेले शख़्स के बस का काम नहीं है, बल्कि उसके लिए चिंतनशील शोधकर्ताओं का एक गिरोह दरकार है, जो निरंतर मेहनत और प्रयत्न से यह काम करता रहे ।"

"हमारी दावत पर लब्बैक कहनेवालों की बढ़ती हुई संख्या उज्ज्वल और अंधकारमय दोनों पहलू रखती है । उज्ज्वल पहलू यह है कि हमारी तरफ़ मुसलमानों का सिर्फ़ वही हिस्सा खिंच रहा है जो नेक और कारआमद है, हमारी पुकार पर जो लोग 'नहनु अंसारुल्लाह' (हम अल्लाह के मददगार हैं) कह कर जमा हो रहे हैं, उनमें एक निहायत ख़ुशगवार अख़लाक़ी तबदीली पाई जाती है, लेकिन इस रौशन पहलू के साथ अंधकारमय पहलू यह है कि अरकाने जमाअत में सब्र और अपने मक़सद से गहरा लगाव और अपने 'अज़ीम अहद' की ज़िम्मेदारियों के एहसास में कमी पाई जाती है, जिसकी वजह से बहुत जल्द ढील पैदा होनी शुरू हो जाती है । अगर लगातार उकसाने और गरमाने का सिलसिला जारी न रहे, गोया अगर उकसानेवाला न हो और कोई दिलचस्प काम उनको फ़ौरन न बताया जाए तो 'इन् क़लबतुम अला अ'अक़ाबिकुम'(उल्टे पैर लौट जाना) की सूरत बहुत आसानी से पैदा हो सकती है । हमारे अरकान में यह तसव्वुर पूरी शिद्दत के साथ जारी नहीं है कि शऊर (बोध) और एहसासे ज़िम्मेदारी के साथ शहादते तौहीद व रिसालत अदा करने के माने यह हैं कि आदमी का अहद किसी शख़्स या जमाअत के साथ नहीं बँध रहा है बल्कि ख़ुदा के साथ बँध रहा है और इस शहादत के साथ जो नस्बुलऐन ख़ुद-बख़ुद मुसलमान की ज़िन्दगी का क़रार पा जाता है उसके लिए काम करना शहादत अदा करनेवाले का अपना कर्त्तव्य बन जाता है ।

दूसरा अंधकारमय पहलू हमारे जमाअती निज़ाम में यह है कि अमीर की पैरवी में कमी पाई जाती है, साथ ही अरकाने जमाअत में आपसी ताल्लुक़ और अपनाइयत और सहयोग में नुमायाँ तरक़्क़ी नहीं हुई और अभी तक ऐसे लोग हमें नहीं मिले हैं जो मक़ामी अमारतों (स्थानीय नेतृत्व) की ज़िम्मेदारियों को अच्छी तरह समझें और स्थानीय जमाअतों के अरकान से सही तर्ज़ पर काम ले सकें ।"

"कठिनाइयों का जायज़ा लेने से तीन चीज़ें बहुत नुमायाँ नज़र आती हैं । एक तो हमारे पास सक्षम कार्यकर्ताओं की बहुत कमी है । दूसरे स्रोत व साधन सीमित हैं और युद्ध की आर्थिक मार ने तो उन्हें शून्य के दर्जे तक पहुँचा दिया है । तीसरी कठिनाई जो इसी दूसरी कठिनाई से पैदा हुई है, यह है कि तामीरी काम करनेवाले लोगों का जो सीमित-सा संग्रह जमाअत के हाथ आया है, वह बिलकुल बिखरा हुआ है और उसे समेटने की कोई तदबीर नहीं है । कुछ पुर्ज़े हैं जो हिन्दुस्तान भर में बिखरे पड़े हैं, उन्हें जमा करके जोड़ देने की स्कीम पर अमल नहीं हो सका है । यही वजह है कि न तो मरकज़ का फ़िक्री 'पावर हाउस' मुकम्मल हो सका है, न अमली कार्रवाइयों की ज़रूरी मशीन बाज़ाबता तौर पर लगाई जा सकी है । इसमें शक नहीं कि इस सूरते हाल के कुछ कारणों तक हमारी पहुँच नहीं है, लेकिन जमाअत इस सिलसिले में ज़िम्मेदारी से बिलकुल बरी नहीं है । हमारे रुफ़क़ा में आर्थिक त्याग का जज़्बा बहुत कम, बल्कि सिफ़र (शून्य) के बराबर है। अभी तक अपने जीवन उद्देश्य के लिए रुपया ख़र्च करना लोगों ने नहीं सीखा और 'इनफ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह' (अल्लाह की राह में ख़र्च करने) का जोश ग़ायब है । मुमकिन है कि अगर दूसरी जमाअतों की तरह चन्दे की अपीलों से लोगों को ठेला जाता रहे और 'व उद्ख़िल य-द-क फ़ी हबीबि-क (और अपना हाथ अपनी जेब में डालो) की आवाज़ लगाई जाए तो यह कमी पूरी हो जाए । लेकिन हम इसे पसंद नहीं करते कि लोग बाह्य प्रेरणा के मोहताज होकर रह जाएँ । हमारी तहरीक का ख़ास मिज़ाज यह चाहता है कि जो कुछ किया जाए आन्तरिक प्रेरणा से किया जाए । जिस तरह एक व्यक्ति अपना वुजूद बाक़ी रखने के लिए बग़ैर किसी बाह्य प्रेरणा के मेदे को खाना पहुँचाता है उसी तरह जमाअत

को अपने जमाअती मेदे यानी 'बैतुलमाल' की भूख का ख़ुद एहसास करना चाहिए, वरना-ज़िंदगी की हरकत ज़्यादा देर तक बरक़रार नहीं रह सकेगी ।

यह सही है कि हमारे अरकान ज़्यादातर वही लोग हैं जो आर्थिक हैसियत से कुछ ज़्यादा ख़ुशहाल नहीं हैं । लेकिन इस बात को न भूलना चाहिए कि इस दावत ने कभी भी आरंभ में ज़्यादा ख़ुशहाल लोगों को अपील नहीं किया है । पहले भी ज़्यादातर ऐसे ही लोग इसकी तरफ़ खिंचते रहे हैं, जिनकी माली हालत बेहतर न थी । दरअसल आर्थिक त्याग के जज़्बे का ताल्लुक़ जेब के भारीपन से उतना ज़्यादा नहीं है, जितना दिल की लगन से है । इसी लगन में कमी मालूम होती है ।

फिर भी माली हालत बिलकुल मायूस कर देनेवाली भी नहीं है । इस बदहाली के ज़माने में भी कुछ न कुछ काम हो रहा है । लेकिन बैतुलमाल इस पोज़ीशन में भी नहीं है कि कोई बड़ा काम शुरू किया जा सके । जितनी निर्माण योजनाएँ मद्देनज़र थीं, लटकी पड़ी हैं । सबसे बड़ा आमदनी का ज़रिया बुक डिपो था, मगर काग़ज की महँगाई और कमी से इसका जारी रहना मुश्किल हो रहा है । दूसरी जगहों से जो रक़में सहायता के लिए बिना माँगे आया करती थीं, 1942 की तुलना में 1943 ई० में उनमें काफ़ी कमी हो गई है । इन हालात को मद्देनज़र रखकर हर रफ़ीक़ (मेम्बर) को अपनी जगह सोचना चाहिए और अपने एहसासे ज़िम्मेदारी से सवाल करना चाहिए कि उनका फ़र्ज़ क्या है ।"

"अक्सर यह महसूस होता है कि हमारे अरकान को अपनी तहरीक और दूसरी तहरीकों (आन्दोलनों) के फर्क़ का पूरा शुऊर नहीं है, हालाँकि इस फ़र्क़ को अच्छी तरह समझ लेने की ज़रूरत है । हक़ीक़त यह है कि यह तहरीक आम तहरीकों से बुनियादी एतबार से भिन्न है । अव्वल, यह कि इसके सामने पूरी ज़िन्दगी का मसला है, ज़िन्दगी के किसी एक पहलू का नहीं । दूसरे, यह कि बाह्य (ख़ारिज) से पहले यह अन्तःकरण (बातिन) से बहस करती है । जहाँ तक पहले पहलू का ताल्लुक़ है, हमारे सामने यह काम इतना बड़ा और अहम है कि जो इस्लामी तहरीक के सिवा दुनिया की किसी तहरीक के सामने नहीं है— और हम उस जल्दबाज़ी से काम नहीं कर सकते, जिस जल्दबाज़ी से दूसरे कर सकते हैं । फिर चूँकि हमारे

लिए ख़ारिज से बढ़कर बातिन अहमियत रखता है, इस वजह से महज़ तंज़ीम और महज़ एक छोटे-से ज़ाबताबंद प्रोग्राम पर लोगों को चलाने और अवाम को किसी ढर्रे पर लगा देने से हमारा काम नहीं चलता । हमें अवाम में जन-आन्दोलन (Mass Movement) चलाने से पहले ऐसे आदमियों को तैयार करने की फ़िक्र करनी है जो बेहतरीन इस्लामी कैरेक्टर रखनेवाले लोग हों और ऐसी आला दर्जे की दिमाग़ी सलाहियतें भी रखते हों कि विचार-निर्माण के साथ सामूहिक नेतृत्व की दोहरी जिम्मेदारियों को संभाल सकें । यही वजह है कि मैं अवाम में तहरीक को फैला देने के लिए जल्दी नहीं कर रहा हूँ, बल्कि मेरी सारी कोशिश इस वक़्त यह है कि मुल्क के अहले दिमाग़ तबक़ों (बुद्धिजीवी वर्ग) को मुतास्सिर किया जाए और उन्हें खंगालकर सबसे अच्छे लोगो को छाँट लेने की कोशिश की जाए, जो आगे चलकर अवाम के लीडर भी बन सकें और सभ्यता व संस्कृति के निर्माता भी । यह काम चूँकि ठंडे दिल से करने का है और एक अवामी तहरीक की तरह फ़ौरी हलचल इसमें नज़र नहीं आ सकती है इस वजह से न सिर्फ़ हमारे हमदर्द व हमख़याल लोग, बल्कि ख़ुद हमारे अरकान तक बददिल होने लगे हैं । मैं चाहता हूँ कि अरकाने जमाअत काम के इस नक़्शे को अच्छी तरह समझ लें और अपनी ताक़त बददिली की भेंट चढ़ाने के बजाए किसी फ़ायदेमंद काम में इस्तेमाल करें ।

यह एतराज़ दुरुस्त है कि जन-साधारण, जो कि बहुत बड़ी तादाद में है, को इस नक़्शे के मुताबिक़ बनाने के लिए लम्बी मुद्दत दरकार है । मगर हम अपने इंक़िलाबी प्रोग्राम को अवाम की मुकम्मल इस्लाह के इंतिज़ार में किसी और वक़्त के लिए टालना नहीं चाहते । हमारे मद्देनज़र सिर्फ़ यह नक़्शा है कि अवाम के लिए एक ऐसी छोटी-सी जमाअत फ़राहम कर ली जाए, जिसका एक-एक फ़र्द अपने बुलंद कैरेक्टर की कशिश से एक-एक इलाक़े के अवाम को संभाल सके, उसकी ज़ात अवाम का आकर्षण-केन्द्र बन जाए और किसी बनावटी कोशिश के बग़ैर बिलकुल फ़ितरी तरीक़े से अवाम की लीडरशिप का मंसब उसे हासिल हो जाए । मगर सिर्फ़ आकर्षण-केन्द्रता से भी काम नहीं चल सकता, उससे काम लेने के लिए दिमाग़ी सलाहियतें भी होनी चाहिएँ, ताकि उन केन्द्रीय शख़्सियतों

के ज़रिए से अवाम की क़ुव्वतें एकत्रित और संगठित होकर इस्लामी इंक़िलाब की राह में लगें ।

एक ठोस, पायदार और हमागीर इंक़िलाब का लाज़िमी शुरुआती मरहला यही है । इस मरहले को सब्र से तय करना ही पड़ेगा, वरना तहरीक की तबाही लाज़िमी है । अगर मौजूदा हालात में अवाम को उकसा दिया जाए, जबकि अवाम को संभालकर ले चलनेवाले स्थानीय रहनुमा मौजूद नहीं हैं तो अवाम बिलकुल मनमाने तरीक़े पर चल पड़ेंगे और अपने आपको अयोग्य लोगों के हवाले कर देंगे ।''

''अवामी तहरीक (Mass-Movement) की शुरूआत से पहले कुछ ठोस काम कर लेने ज़रूरी हैं । एक यह कि हम अपने तालीमी (शैक्षणिक) प्रोग्राम की बुनियाद डाल दें, क्योंकि ज़रूरी नहीं कि हम अपनी ज़िन्दगी में अपने लक्ष्य को पा लें । इसलिए हमें अभी से यह फ़िक्र करनी चाहिए और हम अपनी जगह अपने से बेहतर काम करने के लिए आनेवाली नस्ल को तैयार करना शुरू कर दें । दूसरे, हमें क़लमकारों की एक फ़ौज तैयार कर लेनी चाहिए जो ज्ञान-विज्ञान और साहित्य के हर पहलू से वर्तमान व्यवस्था पर प्रहार कर सके । कुछ सियासी मुफ़क्किर (चिन्तक) हों जो वर्तमान काफ़िराना सियासत के छल प्रपंच की रूप-रेखा को ख़ूब नुमायाँ करें । कुछ आर्थिक विशेषज्ञ हों जो वर्तमान आर्थिक व्यवस्था की ख़राबियों की पोल खोलें । कुछ क़ानून विशेषज्ञों की ज़रूरत है जो इनसानी क़ानूनों की अनियमितताओं को स्पष्ट करें । नैतिक दर्शन और मनोविज्ञान के कुछ विद्वान चाहिए जो इस युग के नैतिक दर्शन और मनोवैज्ञानिक दर्शन की ख़ामियों और अदूरदर्शिता की निशानदेही करें । इस नकारात्मक कारवाई के साथ-साथ ये लोग ज्ञान-विज्ञान की नव स्थापना का रचनात्मक क्राम भी संभाल लें ।

ज्ञान और विचार को नई शिक्षा प्रदान करनेवाले इन विचारकों को मदद पहुँचाने के लिए साहित्यकारों, कथाकारों और नाट्यकारों का एक गिरोह भी ज़रूर होना चाहिए जो फ़िक्री और वैचारिक क्षेत्र में 'गुरिल्ला वार' लड़ता रहे ।

तीसरा रचनात्मक काम हमें यह करना है कि इस्लामी दृष्टिकोण से अवामी तहरीक को चलाने के लिए कार्यकर्ताओं और रज़ाकारों (स्वयंसेवकों) की तरबियत की जाए । हमें मुक़र्रिरों से लेकर ख़ामोश कारकुनों तक बिलकुल नए ढंग के कारिंदे दरकार हैं, जिनके अन्दर ख़ुदा के ख़ौफ़ की रूह जारी व सारी हो । इन तीनों विभागों में जिसमें कम से कम ठोस काम की ज़रूरत है, उसे अंजाम देने से पहले यह उम्मीद न रखनी चाहिए कि हम अवाम में इंक़िलाबी दावत फैलाने के लिए कोई कामयाब क़दम उठा सकते हैं ।''

''काम के इस नक़्शे को अब तक समझा नहीं गया है और आँखें उन्हीं तहरीकों से वाक़िफ़ हैं जो पिछले 20-25 वर्षों से चलती रही हैं । इसलिए लोग बजाए इसके कि इन पहलुओं से अपने आपको और अपनी जमाअत को तैयार करने पर अपनी ताक़त लगाएँ, वे देखना चाहते हैं कि कोई चलता-फिरता काम फ़ौरन होने लगे—और जब वह होता नज़र नहीं आता तो उनके ऊपर मायूसी छाने लग जाती है । बहुत-से अरकाने जमाअत ऐसे हैं जिन्होंने मुझसे मिलकर और पत्र-व्यवहार करके यह सवाल किया है कि हमारा प्रोग्राम क्या है और हम क्या काम करें ? प्रोग्राम की माँग और यह विचार कि इन लोगों को करने के लिए कोई काम बताया नहीं गया, इसकी वजह भी यही है कि हमारे रुफ़क़ा (सहयोगी गण) अभी तक पूरी तरह नहीं समझे हैं कि जिस तहरीक की ख़िदमत के लिए उन्होंने अपने आपको पेश किया है, उसकी विशेषता क्या हैं? हक़ीक़त में मुसलमान को अगर इस बात का पूरा शुऊर हासिल हो कि इस दुनिया में उसकी हैसियत क्या है और उसकी ज़िम्मेदारी कितनी भारी है तो उसे ख़ुद-बख़ुद मालूम हो जाएगा कि उसकी पूरी ज़िन्दगी के लिए एक ऐसा व्यापक और सर्वांगीण (जामे और हमागीर) प्रोग्राम मौजूद है, जिसपर अगर पूरे एहसासे ज़िम्मेदारी के साथ अमल करें तो उसे एक लम्हे की फ़ुरसत भी नहीं मिल सकती ।

हर शख़्स को बहुत-सी शारीरिक और मानसिक ताक़तें अल्लाह ने प्रदान की हैं । ज़िन्दगी के बहुत-से साज़ो सामान बतौर अमानत उसकी तहवील में दिए हैं । बहुत-से इनसानों के साथ उसे ताल्लुक़ात के रिश्तों में बाँधा है और इन रिश्तों के लिहाज़ से अनेक ज़िम्मेदारियाँ डाली हैं । ख़ुदा के

ामने हर शख़्स की ज़िम्मेदारी इस लिहाज़ से यह है कि वह अपनी इन
ाव्वतों को किस तरह इस्तेमाल कर रहा है और ख़ुदा ने जो अमानतें उसके
पुर्द की हैं, उनमें किन तरीक़ों से मामला कर रहा है । एक मुसलमान
; लिए प्रोग्राम यही है कि वह हर वक़्त अपना हिसाब लेकर देखता रहे
न इस अज़ीमुश्शान ट्रस्ट का ट्रस्टी होने की हैसियत से वह अपने फ़र्ज़
ो कहाँ तक अंजाम दे रहा है और उनमें ख़ुदा के मंशा को पूरा करने
किस हद तक कामयाब है ? मिसाल के तौर पर अगर कोई शख़्स अपनी
ोलने की शक्ति के हिसाब ही पर तवज्जोह दे और लगातार इस कोशिश
लगा रहे कि ज़बान की ताक़त जिस मक़सद के लिए अल्लाह ने उसे
ख़्शी थी, उसे कहाँ तक पूरा कर रहा है और यह बाख़्शिश अपने साथ
ो ज़िम्मेदारियाँ लाती थीं, उन्हें कहाँ तक निबाह रहा है, तो शायद इसी
िलसिले के प्रोग्राम से उसे इतनी फ़ुरसत न मिलेगी कि इसके बाद किसी
ूसरे से प्रोग्राम के पूछने की उसे ज़रूरत पेश आए । यही हालत दूसरी
नगिनत सलाहियतों की ज़िम्मेदारियों का है ।

यदि मैं चन्द छोटे-मोटे कामों को बतौर प्रोग्राम के आप लोगों के सामने
ेश कर दूँ तो इसका नतीजा इसके सिवा और कुछ न होगा कि उस बड़े
और सर्वांगीण प्रोग्राम से, जिसकी बेशुमार मदें हैं और जिसपर ज़िन्दगी
 हर साँस में आपको अमल करना है, आप ग़ाफ़िल हो जाएँगे और
मझेंगे कि असल करने के काम वे चन्द हैं, जो एक छोटे से कार्य योजना
ें आपके सामने पेश किए गए हैं । इसलिए कड़ी और पै-दर-पै माँगों
के बावजूद ऐसी कोई चीज़ पेश करने से सख़्ती से बच रहा हूँ और आइंदा
ी बचता रहूँगा ।

मेरी इंतिहाई कोशिश यह है कि हर शख़्स जो जमाअत में दाख़िल हो
वह इस बड़े प्रोग्राम को समझे और इसपर अमलदरामद करे जो शऊरी
ुसलमान होने के साथ आपसे आप उसकी ज़िन्दगी के लिए क़रार पा
जाता है । मुझे हैरत होती है जब मैं अपने रुफ़क़ा से कभी-कभी इस क़िस्म
की बातें सुनता हूँ कि 'हमारे लिए करने का क्या काम है ?' मैं पूछता
हूँ कि क्या आप अपनी तमाम कमज़ोरियों को दूर कर चुके हैं ? क्या
उन तमाम हक़ों की अदायगी से भी आप फ़ारिग़ हो चुके हैं जो अल्लाह

और उसके दीन की तरफ़ से आपके दिमाग़ पर, आपके दिल पर, आप
शरीर के अंगों पर, आपकी ज़ेहनी और जिस्मानी क़ुव्वतों पर और आप
धन-दौलत पर बनते हैं ? और क्या आपके आस-पास कोई इनसान
ख़ुदा से ग़ाफ़िल, गुमराह या दीने हक़ से नावाक़िफ़, या अख़लाक़ी गिराव
में घिरा हुआ बाक़ी नहीं रहा है, जिसके सुधार का फ़र्ज़ आपपर ला
होता हो ? अगर ऐसा नहीं है तो आपके अन्दर यह सोच आ कहाँ
गई कि आपके लिए करने का कोई काम नहीं रहा है और आपको कु
और काम बताया जाए, जिसमें आप व्यस्त हों ।

ये सारे काम तो होने बाक़ी हैं, जो आपसे हर वक़्त उसमें लगे रह
की सख़्त मशग़ूलियत चाहते हैं—और अगर आप इन्हें इस तरह अंजा
देना चाहते हैं जैसा कि इनका हक़ है तो आपको एक लम्हे के लिए द
लेने की फ़ुरसत भी नहीं मिल सकती । मगर चूँकि आपको अभी त
सतह के ऊपर काम करनेवाली पिछली तहरीकों के तौर-तरीक़ों की चा
पड़ी हुई है और आपके अन्दर पूरी तरह इस्लामी तहरीक का एहसास जाग
नहीं है, इसलिए काम न होने के और प्रोग्राम के अभाव की शिकाय
आपकी ज़बान पर आती हैं । इन शिकायतों को दूर करने की सही सूर
मेरे लिए यही है कि काम और प्रोग्राम बताने के बजाए मैं आप लोग
में सिर्फ़ ज़िम्मेदारी के उस एहसास और उस इस्लामी शुऊर को जगाने क
कोशिश करूँ जिसके बाद कभी न ख़त्म होनेवाले काम और स्थाई तन्मयतावाले
प्रोग्राम का नक़्शा ख़ुद-बख़ुद आपके सामने आ सकता है ।''

''अरकाने जमाअत की तरफ़ से बार-बार इस ख़्वाहिश का इज़हार होत
रहता है कि मरकज़ से लगातार उन्हें हिदायतें मिलती रहें और जमाअत
कार्रवाइयों के सिलसिले में लोगों को लगातार हरकत दी जाती रहे । मैं
इस तरीक़ेकार को सही नहीं समझता । मेरी कोशिश यह है कि हर जगह
मक़ामी जमाअत की व्यवस्था को चलाने के लिए ऐसे लोग होने चाहिएँ
जिनमें ख़ुद से काम अंजाम दे लेने की योग्यता (Initiative) मौजूद हो
और जो अपने दायित्व को ख़ुद समझने और अदा करने की अहलियत
रखते हों । लगे-बँधे कामों को मुक़र्रर तरीक़ों के मुताबिक़ अंजाम देते रहने
की आदत मैं नहीं डालना चाहता । मेरा काम यह है कि मैं उसूल और

काम अंजाम देने का तरीक़ा समझा दूँ और उसूली हिदायात देकर छोड़ दूँ। इसके बाद अरकाने जमाअत और ख़ास तौर पर मक़ामी जमाअतों के अमीरों (अध्यक्षों) को ख़ुद अपने काम को समझना और अंजाम देना चाहिए। जहाँ किसी क़िस्म के मुश्किल पेश आएँ, कहीं कोई पेचीदगी पैदा हो या कोई नई स्कीम वे अपने हल्क़े में लागू करना चाहते हों वहाँ वे मुझसे परामर्श कर सकते हैं। लेकिन हर वक़्त इंतिज़ार में रहना कि हिदायात मिलें और ठेला व उकसाया जाता रहे, निगरानी और पूछताछ होती रहे—यह इस तहरीक को चलाने के लिए कोई कारगर सूरत नहीं है, क्योंकि इसका नतीजा यह होगा कि इस राह पर चलने के लिए मुस्तक़िल तौर पर किसी हरकत और हिदायत देनेवाले के मोहताज रहेंगे और अगर किसी वक़्त वह हट गया तो उल्टे पाँव फिर जाएँगे। कम से कम हमारे बिलकुल शुरू ज़माने के कारकुन जो 'साबिक़ीन अव्वलीन' (जमाअत की सबसे पहले सदस्यता स्वीकारनेवाले) की हैसियत रखते हैं उनकी तो यह सिफ़त होनी चाहिए कि उनमें से हर शख़्स के अन्दर यह स्प्रिट मौजूद हो कि अगर कोई इस राह पर चलनेवाला न हो तो वह ख़ुद चलेगा और कोई उकसानेवाला न हो, तो न सिर्फ़ वह ख़ुद हरकत करेगा, बल्कि दूसरों को भी हरकत देगा।''

''वे ग़लतफ़हमियाँ जो आजकल आम तौर पर फैली हुई हैं, एक यह भी है कि लोगों में कुछ विशेष प्रकार के कामों की अहमियत की असंतुलित अवधारणा पैदा हो गई है, जिसकी वजह से यह माँग की जाती है कि बस हर शख़्स उसी तर्ज़ के काम करे—और शब्द 'काम' के माने यही समझे जाते हैं कि हो तो बस वही काम हो। जैसे, देहात का चक्कर लगाना या अवाम में दावत फैलाना वग़ैरह। अब चाहे किसी शख़्स में देहातियों के बीच तक़रीर करने और अवाम की इस्लाह करने की सलाहियत हो या न हो, लोग यह चाहते हैं कि जो शख़्स भी काम करने के लिए उठे, वह यही काम करे। इसके मुक़ाबले में दूसरे काम जो अपने वज़न और नतीजों के लिहाज़ से देहातियों के सुधार और आम दावत से कुछ कम अहम नहीं हैं; बल्कि बहुत ज़्यादा अज़ीमुश्शान हैं, उनकी अहमियत को नहीं समझा जाता।

मैं देखता हूँ कि काम के इस ग़लत तसव्वुर से हमारे रुफ़क़ा भी बहुत कुछ मुतास्सिर हैं और कुछ लोगों में यह रुझान पाया जाता है कि अपनी सलाहियतों को समझे बग़ैर बस वह काम करें जिसे दुनिया लफ़्ज़ काम से ताबीर करती है । इस चीज़ की ग़लती अच्छी तरह समझ लीजिए और इसमें मुब्तला होने से बचिए ।

दरअसल अल्लाह तआला हम में से हर शख़्स से उस इबादत का मुतालबा करता है, जिसकी सलाहियत उसने उसके अन्दर पैदा की है । जो-जो क़ुव्वतें अल्लाह ने किसी शख़्स को बख़्शी हैं, उन सारी क़ुव्वतों से उसे इबादत बजा लानी चाहिए, और जो क़ुव्वत किसी को ज़्यादा अता फ़रमाई है, उसपर इबादत का हक़ भी दूसरी क़ुव्वतों के मुक़ाबले ज़्यादा आयद होता है । मिसाल के तौर पर अगर किसी शख़्स को अल्लाह ने बोलने की ताक़त ज़्यादा दी तो उसके लिए असल इबादत यही होगी कि अपनी ज़बान को अल्लाह का कलिमा बुलंद करने में इस्तेमाल करे । जिसे तहरीर की नुमायाँ सलाहियत बख़्शी गई, उसपर सबसे ज़्यादा क़लम से ही इबादत का फ़र्ज़ अदा करना होगा । ग़रज़ हर शख़्स के ज़िम्मे वही काम है जिसकी क़ुव्वत ख़ास तौर पर अल्लाह ने उसे बख़्शी हो । अगर वह इस काम को छोड़कर किसी दूसरे ऐसे काम में अपनी ताक़त लगाता है, जिसकी सलाहियत उस में कम है तो वह सवाब का हक़दार नहीं, बल्कि उसकी क़ुव्वतें ज़ाया (बर्बाद) हो जाने का अंदेशा है ।

जब अल्लाह के दीन कि ख़िदमत के बेशुमार पहलू हैं और हर पहलू अपनी एक अहमियत रखता है तो लोगों की जिद्दोजुहद को किसी एक दायरे में समेटना बिलकुल ग़लत है । यह कैसे हो सकता है कि हम तालीम व तदरीस (शिक्षा-दीक्षा) के विशेषज्ञों, लेखकों, पत्रकारों सभी को देहात में काम करने के लिए भेज दें ? ऐसा ही एक तजुर्बा कम्यूनिस्ट इंक़िलाब के अलमबरदारों ने शुरू के दिनों में किया था । उन्होंने बुद्धिजीवियों की एक बड़ी खेप मज़दूरों और किसानों में काम करने के लिए फैला दी । लेकिन बहुत-से लोगों की ज़िन्दगियाँ एक ग़लत मसरफ़ में लगा देने के बाद मालूम हुआ कि जो कुछ हुआ है, ग़लत हुआ है । ये नाज़ुक दिमाग़ लोग देहातियों को इंक़िलाब के लिए तैयार भी न कर सके और दूसरी

ख़िदमतों से भी महरूम रहे । हम इस क़िस्म का तजुर्बा दोहराने की हिम्मत नहीं रखते ।

इस गुज़ारिश का मक़सद यह हरगिज़ नहीं है कि देहातियों में काम न किया जाए या अवाम की इस्लाह का कोई काम अहमियत नहीं रखता । जो लोग इस काम की सलाहियतें रखते हों, वे ज़रूर इस मैदान में अपनी सलाहियतों को लगाएँ और अवाम को अपने साथ खींच ले चलने की जिद्दोजुहद करें । पहले भी हमारे कुछ अरकान अवाम में तहरीक को फैलाने का तजुर्बा करते रहे हैं और अब उनकी अमली वाक़िफ़ियत से फ़ायदा उठाकर दूसरे स्थानों पर यह मुहिम शुरू होनी चाहिए । पर जो लोग देहातियों और अवाम की ज़ेहनियत से नावाक़िफ़ और उन्हें ख़िताब करने की सलाहियत से कोरे हों और बुद्धिजीवी तबक़े को मुतास्सिर करने की सलाहियत रखते हों, उन्हें अपनी ताक़त इसी तबक़े की इस्लाह में लगानी चाहिए और इस तबक़े की इस्लाह को कोई मामूली दर्जे का काम न समझना चाहिए । हक़ीक़त में इस तबक़े के एक आदमी की इस्लाह अवामी तबक़े के हज़ार आदमियों की इस्लाह से ज़्यादा वज़नी है । इल्मी और तालीमी पहलू से दीन की ख़िदमत अंजाम देने की क़ाबिलियत रखनेवाले लोग अपने ऊपर और अपने मक़सदे ज़िन्दगी पर ज़ुल्म करेंगे, अगर इन कामों को छोड़कर देहात के चक्कर लगाने लगेंगे या मज़दूरों की बस्तियों में घूमना शुरू कर देंगे । हर आदमी अपनी सलाहियतों को समझे और उनके मुताबिक़ अपने कार्यक्षेत्र की हदबंदी कर ले, इस तरह हर पहलू को मज़बूत करके हम कामयाबी के साथ आगे बढ़ सकेंगे ।''

इस तक़रीर के बाद अनेक स्थानों की जमाअतों के नुमाइंदों ने अपने-अपने हल्क़ों की रिर्पोट पेश की और तफ़्सील के साथ बताया कि वहाँ अब तक क्या काम हुआ है, किस क़िस्म के लोग जमाअत में आए हैं । स्थानीय आबादी में हमारी दावत का असर किस हद तक फैला है । दावत की तरक़्क़ी में किस-किस क़िस्म की मुश्किलें और रुकावटें हायल हैं और दावत के क्या-क्या तरीक़े अपनाए गए हैं ।

यह सिलसिला अभी चल रहा था कि पहली बैठक ख़त्म हो गई । दूसरी बैठक उसी दिन ज़ुह्र के बाद हुई और उसमें भी शुरू में कुछ वक़्त

बाक़ी रिपोर्टें पढ़ने में लग गया । इसके बाद इन रिपोर्टों पर बहस व तबसिर होता रहा । जो कमज़ोरियाँ जमाअत की व्यवस्था में नज़र आईं उनपर अमीर जमाअत ने पकड़ की और उनकी इस्लाह की तरफ़ तवज्जोह दिलाई जैसे कुछ स्थानों पर नामुनासिब या कच्चे ज़ेहन के आदमियों को बेएहतियाती के साथ जमाअत में शामिल कर लिया गया था, उसके मुताल्लिक़ हिदायतें दी गईं कि इस तरह जो लोग तहरीक को अच्छी तरह समझे बग़ैर जमाअत में आ गए हैं और जिनके अन्दर कोई नुमायाँ अख़लाक़ी तबदीली नहीं पाई जाती, उन्हें पुख़्ता करने की कोशिश की जाए और फिर भी जिनके अन्दर ख़ामी रह गई हो तो उनसे दरख़्वास्त की जाए कि निज़ामे जमाअत से बाहर रहकर हर मुमकिन तरीक़े से हमारे साथ सहयोग करें ।

साथ ही यह भी कि आइंदा सिर्फ़ उन्हीं लोगों को जमाअत में लिया जाए जिन्होंने अच्छी तरह जमाअत के मस्लक को समझ लिया हो, जो जमाअत के दस्तूर की रूह को जज़्ब कर चुके हों और जिन के अख़लाक़ और सीरत में ज़रूरी तबदीलियाँ नुमायाँ नज़र आती हों ।

इसी तरह जहाँ दावत के तरीक़ों में कोई कमज़ोरी पाई जाती थी, अमीरे जमाअत ने उसपर भी गिरफ़्त की और तफ़सील के साथ बताया कि दावत का सही तरीक़ा क्या है, साथ ही दावत की राह में जो मुख़्तलिफ़ रुकावटें और मुश्किलें बयान की गई थीं, उन्हें दूर करने की तदबीरें क्या हैं । जैसे आपने हिदायत की कि अवाम में फ़िलहाल सिर्फ़ दीन की हक़ीक़त और दीनदारी के असल मफ़हूम (भावार्थ) की तबलीग़ की जाए । आख़िरी और इंतिहाई तक़ाज़ों को पेश करने में अभी एहतियात से काम लिया जाए । फ़िलहाल सारा ज़ोर तौहीद (एकेश्वरवाद), ख़ुदा व रसूल की पैरवी दावत और इस तबलीग़ व तलक़ीन पर लगाना चाहिए कि लोगों के अन्दर ख़ुदा के सामने अपनी ज़िम्मेदारी और जवाबदेही का एहसास पैदा हो जाए । दावत के सिलसिले में इस बात का भी ख़ास तौर पर लिहाज़ रखना चाहिए कि दावत के बाद अपने आपको किसी ख़ास निज़ामे जमाअत से सम्बन्ध रखनेवाले मुबल्लिग़ (प्रचारक) की हैसियत से पेश न करें और न निज़ामे जमाअत की तरफ़ अपनी तक़रीरों व बातचीत में आम दावत दें ।

जो लोग पढ़े-लिखे तबक़े में काम करें, उन्हें बहस तथा वाद-विवाद

बजाए लिट्रेचर के फैलाव में अपनी सलाहियत लगानी
ाहिए । हर शख़्स जिससे वास्ता पेश आए, उसकी ज़ेहनियत को सामने
ब्रकर जमाअत के लिट्रेचर में से ख़ास चीज़ें एक सही तरतीब से उसके
ध्ययन के लिए तजवीज़ की जाएँ । इसके बाद ज़िन बातों की अधिक
याख्या की ज़रूरत पेश आए, उनपर ज़बानी गुफ़्तगू कर ली जाए । लेकिन
हाँ बात-चीत का रुख़ बहस व मुनाज़िरे (शास्त्रार्थ) की तरफ़ मुड़ता नज़र
ाए, वहाँ आगे बढ़ने से साफ़ इंकार कर देना चाहिए और अपने आपको
़माग़ी कुश्ती के फ़ितने में मुब्तला होने से बचाना चाहिए । जो लोग
ूरी जमाअतों के साथ ताल्लुक़ रखते हैं या अपनी वैचारिक मान्यताओं
संलग्नता (ग़ुलू) रखते हैं, उन्हें ख़ामख़ाह खींचने और उनसे ऐसी बहसें
ड़ने से सख़्त परहेज़ किया जाए जो उनके अन्दर ख़राबी पैदा करनेवाली
ं ।

जहाँ विरोध और रुकावटें पाई जाती हों, वहाँ देख लिया जाए कि क्या
चीज़ें किसी ग़लतफ़हमी की बुनियाद पर हैं या हमारे मक़सद और मस्लक
ो ठीक-ठीक जान लेने के बाद जान-बूझकर विरोध किया जा रहा है ।
गर पहली शक्ल हो तो माक़ूल तरीक़ों से ग़लतफ़हमी को दूर करने की
ोशिश की जाए और जहाँ महसूस हो कि दूसरी शक्ल है, वहाँ भले तरीक़े
सब्र करके काम लिया जाए ।

इन ज़रूरी बातों के आख़िर में अमीरे जमाअत ने रुफ़क़ा से कहा—"जो
ात मैं ख़ास तौर पर आपके ज़ेहननशीं कराना चाहता हूँ वह यह है कि
बलीग़ सिर्फ़ तक़रीर, गुफ़्तगू या तहरीर ही के ज़रिए से नहीं हुआ करती,
ल्कि असल तबलीग़ वह होती है जो एक विचारधारा के आवाहक (दाऔ)
पनी पूरी ज़िन्दगी से हर वक़्त करते रहते हैं, बशर्ते कि उनकी ज़िन्दगी
स विचारधारा का साक्षात रूप और उसकी ज़िन्दा गवाही बन गई हो ।
ाप जिस विचारधारा के आवाहक हैं अगर उसके साँचे में आपकी ज़िन्दगी
ूरी तरह ढल जाए तो इस विचारधारा के ख़िलाफ़ चलनेवाली दुनिया में
ापकी हालत ऐसी होगी, जैसे एक गोल सूराख़ में चौकोर कील अपने
े वुजूद से हर वक़्त, हर आयाम (ज़ाविए) पर उस गोल सूराख़ के पूरे
ुजूद के साथ संघर्षरत रहती है और हर वक़्त अपने और उसके विभेद

का प्रदर्शन करती रहती है। या जैसे बर्फ़ख़ाने में कुछ दहकते हुए अंगा
जो अगर कोई आवाज़ बुलंद न कर रहे हों तब भी उनका महज़ मौज
होना ही बजाए ख़ुद बर्फ़ की सिल्लियों के ख़िलाफ़ एक मुस्तक़िल एला
जंग है। अगर उनके आस-पास कोई ज्वलनशील पदार्थ मौजूद होगा
वह किसी प्रेरणा के बग़ैर उनसे असर लेकर उत्प्रेरित हो जाएगा और बर्फ़ख़ा
आग की भट्टी में तबदील होकर रहेगा।

बेसमझे-बूझे इस्लाम को अपनाने और मुनाफ़िक़त भरे इस्लाम का मामल
तो दूसरा है, लेकिन जब कोई शख़्स निष्ठा के साथ शऊरी तरीक़े से इस्ला
क़बूल कर लेता है तो उसके साथ ही विचार, अख़लाक़, अर्थतन्त्र, सामाजिक
और संस्कृति अर्थात जीवन के हर क्षेत्र में अपने ग़ैर इस्लामी माहौल
उसका संघर्ष शुरू हो जाता है। उसे यह माहौल और उस माहौल व
यह हर वक़्त खटकता है। उसकी पूरी हस्ती अज्ञानता के वातावरण
ख़िलाफ़ एक एजीटेशन बन जाती है—और इस फ़ज़ा में वह इस तर
अजनबी और अलग-थलग होकर रह जाता है जैसे स्याह चादर पर सफ़े
धब्बा। मैं चाहता हूँ कि इस कुफ़्र और जाहिलियत के मारे हुए माहौ
में आप यही कुछ बनकर रह जाएँ, ताकि अपनी ज़िन्दगी के हर लम
में इस निज़ाम के हर जुज़ (अंश) से हर-हर क़दम पर आपका टकरा
हो और अपने पूरे वुजूद से आप इसके ख़िलाफ़ एक मुस्तक़िल एलाने ज
और एक चिरस्थाई और शाश्वत प्रोटेस्ट बन जाएँ। यह चहुमुखी औ
निरंतर संघर्ष और हर क्षण का ख़ामोश टकराव हज़ार प्रवचनों (वअज़ों)
तक़रीरों और आलेखों से ज़्यादा भारी है, बल्कि दरहक़ीक़त यही अस्
चीज़ है और इसके बग़ैर विचारों की तबलीग़ की मुहिम पूरी नहीं हो सकती

इन जामे'अ (सारगर्भित) मशविरों के बाद आपने रुफ़क़ा की एक बड़
और आम कमज़ोरी की व्याख्या करते हुए कहा कि मैंने यह महसूस किय
है कि अलग-अलग जमाअतों से आनेवाले लोग अपने साथ अपने पिछले
गिरोही और सियासी ज़िन्दगियों के असरात ले आए हैं, उनमें अब तव
पहले के जमाअती पक्षपात का असर मौजूद है, मिसाल के तौर पर ज
गिरोह कांग्रेस से निकलकर आया है, वह भले ही कांग्रेस के हक़ में सकरात्मव
पक्षपात नहीं रखता, लेकिन मुस्लिम लीग की मुख़ालफ़त का रुझान उनवे

दिमाग़ों में खुले तौर पर बाक़ी है । यही हाल लीग से आनेवाले हज़रात का है । फिर जो लोग ख़ास मज़हबी गिरोहों से टूटकर आए हैं, उनमें भी उन गिरोहों के ख़िलाफ़ अच्छा ख़ासा तेज़ मुख़ालिफ़त का जज़्बा पाया जाता है, जिनसे लड़ने में उनकी उम्रें गुज़र गईं । अनेक तरह के पक्षपात लिए हुए लोग जब कभी मिल बैठते हैं और बहस व गोष्ठी का सिलसिला चल निकलता है तो कई बार यह अंदेशा होता कि उनकी आपसी बात-चीत पहले के पक्षपात को उसी तरह ताज़ा न कर दे, जिस तरह क़बीला औस और ख़ज़रज के लोगों में मुनाफ़िक़ों का छोड़ा हुआ शोशा बुआस की जंग के असरात ताज़ा कर देता है ।

इस तबसिरे का सिलसिला तीसरी बैठक तक जारी रहा । इसके बाद तीसरी बैठक में सूबे के काम की तंज़ीम (व्यवस्था) के बारे में मशविरा हुआ । मशविरे के दौरान में अंदाज़ा हुआ कि इस बात की ज़रूरत शिद्दत से महसूस की जा रही है कि सूबा बिहार में कम से कम एक सेक्रेटरी जमाअत ज़रूर होना चाहिए जो मुस्तइद और फ़र्ज़शनास हो और अनेक स्थानों की जमाअतों और उनके अरकान के साथ तालमेल रखे, उनकी कार्रवाईयों से वाक़िफ़ रहे, समय-समय पर उन्हें जमा करता रहे और कभी-कभी ख़ुद उनके पास पहुँचता रहे । इस ग़रज़ के लिए मौलाना मसऊद आलम नदवी सबसे ज़्यादा मुनासिब व्यक्ति हो सकते थे, लेकिन अफ़सोस है कि उनकी सेहत इसकी इजाज़त नहीं देती । इसलिए तजवीज़ किया गया कि बिहार की जमाअतों के अरकान जल्द से जल्द आपस में मशविरा करके क़य्यिम जमाअत (सेक्रेटरी) का चुनाव करें ।

दूसरी चीज़ जिसके बारे में कई मुक़ामी जमाअतों के अमीरों को हिदायत की गई, यह थी कि अपने-अपने हल्क़े के अरकान की सलाहियतों का सही-सही अंदाज़ा करके उनसे काम लें और जुमे के इजतिमा की सख़्ती से पाबंदी करें, जो लोग बिना माक़ूल उज़्र के इजतिमा में न आएँ उनके बारे में यह समझ लिया जाए कि वे जमाअत से दिलचस्पी नहीं रखते । जुमे के इजतिमा से निम्न तरीक़ों से फ़ायदा उठाया जाए—

1. जमाअत की तरफ़ से प्रकाशित होनेवाले लिट्रेचर का अध्ययन किया जाए, न सिर्फ़ ताज़ा छपनेवाली चीज़ों का बल्कि पहले की छपी हुई किताबों

का भी, ताकि उनके मज़ामीन बार-बार ज़ेहन में ताज़ा होते रहें ।

2. पिछड़े और कमज़ोर रफ़ीक़ों को उठाने, उभारने और हमदर्दी व इख़लास के साथ उनकी कमज़ोरियों को दूर करने की कोशिश की जाए ।

3. दावत को अनेक हल्क़ों में फैलाने की तदबीरों पर ग़ौर किया जाए ।

4. हर फ़र्द ने पिछले हफ़्ते में जो काम किया हो उसे वह पेश करे और दूसरे अरकान या तो उससे फ़ायदा उठाएँ या अगर उनके तरीक़ेकार में कोई ग़लती पाएँ तो उसकी इस्लाह करें या अगर उसे मुश्किलें पेश आई हों तो उसका हल तलाश करें ।

5. दावत की राह में जो रुकावटें पेश आ रही हों, उनका जायज़ा लिया जाए और उन्हें दूर करने की तदबीरें सोची जाएँ ।

6. अगर मक़ामी जमाअत में कोई साहब दर्से क़ुरआन (क़ुरआन का पाठ कराने) की योग्यता रखते हों तो हफ़्तावार दर्स हो, वरना तफ़हीमुल क़ुरआन की मदद से अल्लाह की किताब में गहरी नज़र पैदा करने की कोशिश की जाए ।

यह समझ लेना चाहिए कि यह हफ़्तावार इजतिमा कोई मामूली चीज़ नहीं है, बल्कि यह अरकान को जमाअत से जोड़े रखने और उनके अन्दर तहरीक से दिलचस्पी और आपसी सहयोग की रूह बरक़रार रखने का एक बड़ा ज़रिया है । इससे गफ़लत बरतने का लाज़िमी नतीजा यह होगा कि जमाअत ठिठुर जाएगी, हमारे पास मालूम करने का कोई ज़रिया न रहेगा कि हममें से कौन लोग वाक़ई तहरीक से दिलचस्पी रखते हैं और कौन नहीं रखते । हमारे अरकान एक दूसरे से अजनबी रहेंगे । उनके दर्मियान न दोस्ती और रिफ़ाक़त का रिश्ता मज़बूत हो सकेगा, न वे जमाअत के कामों में सहयोग कर सकेंगे—और न एक दूसरे के सुधार में मददगार बन सकेंगे ।

तीसरी चीज़ जिसकी तरफ़ अमीरे जमाअत ने तमाम रुफ़क़ा को पूरे ज़ोर के साथ तवज्जोह दिलाई, वह यह थी कि उन्हें अहद (शपथ) की ज़िम्मेदारियों को समझने और अदा करने की फ़िक्र करनी चाहिए और हर शख़्स को अपनी क़ुव्वतों और क़ाबिलियतो का पूरा जायज़ा लेकर ठीक-ठीक

फ़ैसला करना चाहिए कि वह क्या काम कर सकता है, फिर जिस काम की अहलियत व सलाहियत उसे अपने अन्दर महसूस हो, उसे अंजाम देने में बस लग जाना चाहिए । यह वक़्त वह है कि जो हमसे अपने आख़िरी हद तक संघर्ष और जिद्दोजुहद की माँग कर रहा है । ज़रूरत है कि एक लम्हे का इंतिज़ार किए बग़ैर हममें से हर शख़्स उठे और जिससे जो कुछ हो सकता है, कर ले । जो बुद्धिजीवी हैं वे ग़लत विचारधाराओं को निरस्त करने और इस्लामी विचारधारा के प्रसार में जुट जाएँ, जो शिक्षाविद हैं वे नई नस्ल की तैयारी के लिए मुस्तइद हो जाएँ । जो साहित्यकार हैं वे साहित्य के विभिन्न मार्गों से वर्तमान व्यवस्था पर हमलावर हों और इस्लामी व्यवस्था की दावत फैलाएँ । जो लेखक हैं वे पत्र-पत्रिकाओं में लेख छपवाएँ । जो बात-चीत से लोगों पर असर डालने की योग्यता रखते हैं, वे व्यक्तिगत (इनफ़िरादी) तबलीग़ की मुहिम में लग जाएँ । जिन्हें देहातों में काम करने या अवाम को सम्बोधित करने का तजुर्बा हो, वे देहात में घूमें और अवाम की इस्लाह की कोशिश करें । जिनको अल्लाह ने बेहतर आर्थिक स्थिति दी है, वे बैतुलमाल की मज़बूती की फ़िक्र करें । ग़रज़, किसी क्षमता का लेशमात्र भाग भी नष्ट न होने पाए । रहा यह सवाल कि आप कितना काम करें और किस हद तक करें तो इसका जवाब यह है कि इसका बेहतरीन फ़ैसला आपका अपना ज़मीर (अन्तरात्मा) ही कर सकता है । आप इतना काम करें और इस हद तक किए चले जाएँ जिसके बाद आपका ज़मीर मुतमइन हो जाए कि ख़ुदा जब आपसे आपके वक़्त और क़ुव्वतों का हिसाब लेगा तो आप इस ख़िदमत के कारनामे को पेश करके मग़फ़िरत (बख़्शिश) की उम्मीद कर सकेंगे ।

आख़िर में जनाब फ़ज़्लुर्रहमान साहब (मुंगेर) की एक स्कीम ज़ेरे बहस आई, जिसका निचोड़ यह था कि अरकाने जमाअत को हराम माल से बचने की वजह से जो माली मुश्किलें पेश आती हैं, उन्हें दूर करने के लिए अनेक स्थानों पर इस तर्ज़ की करोबारी स्कीमें शुरू की जाएँ कि कुछ मालदार और कुछ कारिंदे मिलकर धन अर्जित करें और यह धन एक निर्धारित अनुपात से सरमाया लगानेवालों, मेहनत करनेवालों और जमाअत के बैतुलमाल पर तक़सीम होती रहे । इस तरह अनेक स्थानों पर तबलीग़ी

व तालीमी केन्द्रों को स्थापित करके काम की रफ़तार तेज़ की जा सकती है ।

इस तजवीज़ पर राय-मशविरे की गुफ़्तगू कुछ देर तक होती रही । मौलाना अमीन अहसन साहब इस्लाही ने इस सिलसिले में एक संक्षिप्त तक़रीर की, जिसमें उन्होंने यह ख़याल ज़ाहिर किया कि अगर अरकाने जमाअत आपस में अलग-अलग तौर पर आर्थिक मामलों में एक दूसरे की मदद करें तो यह निहायत बेहतर और ज़रूरी है, बल्कि जहाँ कोई रुक्न आर्थिक कठिनाइयों में घिर गया हो, वहाँ सारे अरकान का फ़र्ज़ है कि उसकी मुश्किलों को हल करने के लिए वे जो कुछ कर सकते हैं करें लेकिन जमाअत को अपनी जमाअती हैसियत में अल्लाह के कलिमे की सरबुलंदी और दावती जिद्दोजुहद के सिवा कोई कारोबारी दौड़-भाग नहीं करनी चाहिए । अगर एक इंक़िलाबी जमाअत एक पहलू से कारोबारी इदारा भी बन जाए तो एक तो उसकी कोशिशें बिलकुल बँटकर रह जाएँगी और दूसरे कुछ लोग बिना हक़ीक़ी जज़्बे के महज़ आर्थिक स्वार्थ की हवस में उसके अन्दर जज़्ब होना शुरू हो जाएँगे । नतीजा यह होगा कि हमारे असल मक़सद को नुक़सान पहुँचेगा । इस ख़याल की ताईद अमीरे जमाअत ने भी की और बग़ैर किसी वोटिंग के फ़ज़लुर्रहमान साहब ने ख़ुद इस दृष्टिकोण को मान लिया और अपनी इस तजवीज़ को जो बहुत दिनों के सोच-विचार के बाद मुरत्तब करके लाए थे, निस्संकोच वापस ले लिया

दूसरे अरकाने जमाअत से अलग-अलग विचार-विमर्श जारी रहा और हर शख़्स और हर जमाअत को मक़ामी ज़रूरतों के लिहाज़ से अमीरे जमाअत ने मशविरे और हिदायतें दीं ।

आम मुलाक़ातों के लिए 23 अक्टूबर का दिन तय किया गया था, लेकिन दरभंगा और दूसरे स्थानों से अनेक लोग 22 की शाम से ही आने लगे, जिनमें मुस्लिम लीग, अमारते शरिआ, जमीअत उलेमा और दूसरी जमाअतों से ताल्लुक़ रखनेवाले लोग भी शामिल थे । उनसे घंटों अमीरे जमाअत और दूसरे रुफ़क़ा विचार-विमर्श करते रहे और अपने मस्लक का स्पष्टीकरण करने के साथ ग़लतफ़हमियों को दूर किया जो अलग-अलग हल्क़ों में जमाअत के बारे में पाई जाती हैं । इन गुफ़्तगुओं का ख़ुलासा

पेश करना मुश्किल है । संक्षेप में दो-तीन बातों की तरफ़ इशारा किया जाता है ।

कुछ हल्क़ों की तरफ़ से मुसलमानों में यह ग़लतफ़हमी बड़े पैमाने पर फैलाई गई है कि हम आम मुसलमानों को काफ़िर समझते हैं, इसका असर दरभंगा में भी पाया जाता था । अगरचे इसकी अमली तरदीद (व्यावहारिक खंडन) के लिए यह बात काफ़ी थी कि हमने जुमे की नमाज़ आम मुसलमानों के साथ अदा की, लेकिन इसपर भी लोगों के लिए यह सवाल अपनी जगह क़ायम ही रहा है और जवाब में अमीरे जमाअत ने लोगों को साफ़-साफ़ बता दिया कि यह सिर्फ़ एक बुहतान (आरोप) है, जो हमारी दावते इस्लाह में रुकावट डालने के लिए ज़ान-बूझकर लगाया जा रहा है ।

दूसरा संदेह आम तौर पर अनेक जमाअतों में यह फैला हुआ है कि हमारी उनसे कोई कशमकश है । इस सिलसिले में भी साफ़-साफ़ बता दिया गया कि सीधे रूप में किसी जमाअत के ख़िलाफ़ हमारा कोई अभियान (Campaign) नहीं है । हम जिन मामलों में कुछ जमाअतों के मसलक से मतभेद रखते हैं, उनका स्पष्टीकरण लिट्रेचर में कर दिया गया है । अब हमारा असल संघर्ष काफ़िराना निज़ामे हयात से है । सीमित उद्देश्यों पर काम करनेवाली जमाअती व्यवस्थाओं से नहीं है ।

बहुत-से लोग इस बात को भी समझना चाहते थे कि यह इस्लामी इंक़िलाब बरपा किस तरह होगा ? इसकी वज़ाहत करते हुए मौलाना मौदूदी साहब ने बताया कि शुरूआत हमेशा विचार की तबदीली और ज़ेहनियतों के नव निर्माण से होती है । इसके बाद एक उसूली जमाअत को अपने लक्ष्य की ओर बढ़ने के लिए वे मुश्किलें पेश नहीं आतीं जो एक क़ौमी गिरोह को पेश आती हैं । एक क़ौम के लिए तो बेशक यह सवाल बड़ा अहम है कि वह दूसरी क़ौमों के मुक़ाबले के लिए प्रशिक्षित आदमी और सामान कहाँ से लाए । लेकिन एक उसूली जमाअत के लिए वे सवालात अहमियत नहीं रखते, उसके लिए तो सिर्फ़ यह सवाल अहमियत रखता है कि उसकी दावत को जो लोग लेकर उठें, वे अपने उसूलों पर अक़ीदे और अमल दोनों लिहाज़ से सच्चा ईमान रखनेवाले हों, जिसके ज़रिए विरोधियों के दिलो दिमाग़ फ़तह हो सकते हैं । इस तरह जब दावत इस मंज़िल को

पहुँचती है, जहाँ मौजूद व्यवस्था से उसका संघर्ष होने लगता है तो उसे संसाधन और हर क़िस्म के तरबियत याफ़्ता आदमी ख़ुद स्थापित व्यवस्था ही से मिलते चले जाते हैं । उसे आदमी बनाने नहीं पड़ते, बल्कि बने-बनाए आदमियों को अपने साँचे में ढालना पड़ता है ।

'हलक़-ए-मुतालिआ इस्लामी' (इस्लामी स्टडी सर्किल) की तरफ़ से आम जलसे का बंदोबस्त किया गया था और प्रोग्राम यही था कि अमीरे जमाअत अवाम को भी ख़िताब करें । इस प्रोग्राम के मुताबिक़ बहुत-से लोग तो सिर्फ़ मौलाना की तक़रीर सुनने के लिए आए थे । पर अफ़सोस है कि जलसे के प्रबन्धकों को प्रोग्राम बदलना पड़ा और मौलाना की तक़रीर न हो सकी । इसकी वजह यह थी कि दरभंगा में एक गिरोह चन्द रोज़ पहले से फ़ितना फैलाने में लगा हुआ था और इस बात की संभावना थी कि ये लोग जलसे में गड़बड़ी पैदा करने की कोशिश करेंगे । ये हालात सुनकर अमीरे जमाअत ने जलसे में शरीक होने से असमर्थता व्यक्त की, क्योंकि उनका मुस्तक़िल मस्लक यह है कि फ़ितने से बचा जाए और जहाँ लोग हमारी दावत को सुनना न चाहते हों, उनके कानों में हक़ की आवाज़ को ज़बरदस्ती ठूँसने की कोशिश न की जाए । चुनांचे उनके बजाए इज्लासे आम में मलिक नसरुल्लाह ख़ाँ अज़ीज़, एडीटर, 'मुसलमान' लाहौर ने तक़रीर की, जो कुल मिलाकर कामयाब रही ।